प्रातः स्मरणीय परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू के सत्संगप्रवचन

जीते जी मुक्ति

ब्रह्मचर्य-रक्षा का मंत्र

ॐ नमो भगवते महाबले पराक्रमाय

मनोभिलाषतं मनः स्तंभ कुरु कुरु स्वाहा।

रोज दूध में निहारकर 21 बार इस मंत्र का जप करें और दूध पी लें। इससे ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है। स्वभाव में आत्मसात् कर लेने जैसा यह नियम है।

अनुक्रम

निवेदन

पूज्यपाद स्वामी जी की सहज बोलचाल की भाषा में ज्ञान, भक्ति और योग की अनुभव-सम्पन्न वाणी का लाभ श्रोताओं को तो प्रत्यक्ष मिलता ही है, घर बैठे अन्य भी भाग्यवान आत्माओं तक यह दिव्य प्रसाद पहुँचे इसलिए पू. स्वामी जी के सत्संग-प्रवचनों में से कुछ अंश संकलित करके यहाँ लिपिबद्ध किया गया है।

इस अनूठी वाग्धारा में पूज्यश्री कहते हैं-

"..... प्रतीति संसार की होती है, प्राप्ति परमात्मा की होती है।"

".....माया दुस्तर है लेकिन मायापति की शरण जाने से माया तरना सुगम हो जाता है।"

"..... ईश्वर किसी मत, पंथ, मजहब की दीवारों में सीमित नहीं है। वेदान्त की दृष्टि से वह प्राणिमात्र के हृदय में और अनन्त ब्रह्माण्डों में व्याप रहा है। केवल प्रतीति होने वाली मिथ्या वस्तुओं का आकर्षण कम होते ही साधक उस सदा प्राप्त ईश्वर को पा लेता है।"

".... जितने जन्म-मरण हो रहे हैं वे प्रज्ञा के अपराध से हो रहे हैं। अतः प्रज्ञा को दैवी सम्पदा करके यहीं मुक्ति का अनुभव करो।"

"...... कर्म का बदला जन्म-जन्मान्तर लेकर भी चुकाना पड़ता है। अतः कर्म करने में सावधान.... और कर्म का फल भोगने में प्रसन्न....।"

"......रामनाथ तर्करत्न और धर्मपत्नी बाहर से अकिंचन फिर भी पूर्ण स्वतन्त्र। बिना सुविधाओं के भी निर्भीक और सुखी रहना मनुष्य के हाथ की बात है। वस्तुएँ और सुविधा होते हुए भी भयभीत और दुःखी रहना यह मनुष्य की नासमझी है।"

".....मनुष्य जैसा सोचता है वैसा हो जाता है। मन कल्पतरू है। अतः सुषुप्त दिव्यता को, दिव्य साधना से जगाओ। अपने में दिव्य विचार भरो।"

इस प्रकार की सहज बोलचाल के रूप में प्रकट होने वाली, गहन योगानुभूतियों से सम्पन्न अमृतवाणी का संकलन आपके करकमलों तक पहुँचाने का हमें सौभाग्य मिल रहा है। स्वयं इससे लाभान्वित होकर अन्य सज्जनों तक पहुँचायें और आप भी सौभाग्यशाली बनें इसी अभ्यर्थना के साथ....

श्री योग वेदान्त सेवा समिति
अमदावाद आश्रम

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जीते जी मुक्ति

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्न चेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।।

"अन्तःकरण की प्रसन्नता होने पर इसके सम्पूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्तवाले कर्मयोगी की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हटकर एक परमात्मा में ही भली भाँति स्थिर हो जाती है।"

(भगवदगीताः 2.65)

चित्त की मधुरता से, बुद्धि की स्थिरता से सारे दुःख दूर हो जाते हैं। चित्त की प्रसन्नता से दुःख तो दूर होते ही हैं लेकिन भगवद-भक्ति और भगवान में भी मन लगता है। इसीलिए कपड़ा बिगड़ जाये तो ज्यादा चिन्ता नहीं, दाल बिगड़ जाये तो बहुत फिकर नहीं, रूपया बिगड़ जाये तो

ज्यादा फिकर नहीं लेकिन अपना दिल मत बिगड़ने देना। क्योंकि इस दिल में दिलबर परमात्मा स्वयं विराजते हैं। चाहे फिर तुम अपने आपको महावीर के भक्त मानो चाहे श्रीकृष्ण के भक्त मानो चाहे मोहम्मद के मानो चाहे किसी के भी मानो, लेकिन जो मान्यता उठेगी वह मन से उठेगी और मन को सत्ता देने वाली जो चेतना है वह सबके अन्दर एक जैसी है।

ईश्वर को पाने के लिए, तत्त्वज्ञान पाने के लिए हमें प्रतीति से प्राप्ति में जाना पड़ेगा।

एक होती है प्रतीति और दूसरी होती है प्राप्ति। प्रतीति माने : देखने भर को जो प्राप्त हो वह है प्रतीति। जैसे गुलाब जामुन खाया। जिह्वा को स्वाद अच्छा लगा लेकिन कब तक ? जब तक गुलाब जामुन जीभ पर रहा तब तक । गले से नीचे उतरने पर वह पेट में खिचड़ी बन गया। सिनेमा में कोई दृश्य बड़ा अच्छा लगा आँखों को। ट्रेन या बस में बैठे पहाड़ियों के बीच से गुजर रहे हैं। संध्या का समय है। घना जंगल है। सूर्यास्त के इस मनोरम दृश्य को बादलों की घटा और अधिक मनोरम बना रही है। लेकिन कब तक ? जब तक आपको वह दृश्य दिखता रहा तब तक। आँखों से ओझल होने पर कुछ भी नहीं। सब प्रतीति मात्र था।

डिग्रियां मिल गई यह प्रतीति है। धन मिल गया, पद मिल गया, वैभव मिल गया यह भी प्रतीत है। मृत्यु का झटका आया कि सब मिला अमिला हो गया। रोज रात को नींद में सब मिला अमिला हो जाता है। तो यह सब मिला कुछ नहीं, मात्र धोखा है, धोखा। मुझे यह मिला.... मुझे वह मिला..... इस प्रकार सारी जिन्दगी जम्पींग करते-करते अंत में देखो तो कुछ नहीं मिला। जिसको मिला कहा वह शरीर भी जलाने को ले गये।

यह सब प्रतीति मात्र है, धोखा है। वास्तव में मिला कुछ नहीं।

दूसरी होती है प्राप्ति। प्राप्ति होती है परमात्मा की। वास्तव में मिलता तो है परमात्मा, बाकी जो कुछ भी मिलता है वह धोखा है।

परमात्मा तब मिलता है जब परमात्मा की प्रीति और परमात्म-प्राप्त, भगवत्प्राप्त महापुरुषों का सत्संग, सान्निध्य मिलता है। उससे शाश्वत परमात्मा की प्राप्ति होती है और बाकी सब प्रतीति है। चाहे कितनी भी प्रतीति हो जाये आखिर कुछ नहीं। ऊँचे ऊँचे पदों पर पहुँच गये, विश्व का राज्य मिल गया लेकिन आँख बन्द हुई तो सब समाप्त।

प्रतीति में आसक्त न हो और प्राप्ति में टिक जाओ तो जीते जी मुक्त हो।

प्रतीति मात्र में लोग उलझ जाते हैं परमात्मा के सिवाय जो कुछ भी मिलता है वह धोखा है। वास्तविक प्राप्ति होती है सत्संग से, भगवत्प्राप्त महापुरुषों के संग से।

महावीर के जीवन में भी जो प्रतीति का प्रकाश हुआ वह तो कुछ धोखा था। वे इस हकीकत को जान गये। घरवालों के आग्रह से घर में रह रहे थे लेकिन घर में होते हुए भी वे अपनी आत्मा में चले जाते थे। आखिर घरवालों ने कहा कि तुम घर में रहो या बाहर, कोई फर्क नहीं पड़ता। महावीर एकान्त में चले गये। प्रतीति से मुख मोड़कर प्राप्ति में चले गये।

जब रामजी का राज्याभिषेक हुआ तो कुछ ही दिनों के बाद कौशल्याजी रामजी से कहती हैं-

"हे राम ! हमारे वनवास जाने की व्यवस्था करो।" तब राम जी कहते हैं-

"माँ ! इतने दिन तो आपका सान्निध्य न पाया। चौदह वर्ष का वनवास काटा। अभी तो जब राजकाज से थकूँगा तब तुम्हारी गोद में सिर रखूँगा। माँ, अगर कोई मार्गदर्शन चाहिएगा तो तुम्हारे पास आऊँगा। मुझे साँत्वना मिलेगी, विश्रान्ति मिलेगी तुम्हारी गोद में। अभी तो तुम्हारी बहुत आवश्यकता है।"

कौशल्याजी सहज भाव से कहती हैं-

"हे राम ! इस जीव को मोह है। वह जब बालक होता है तो समझता है माँ-बाप को मेरी आवश्यकता है। बड़ा होता है तो समझता है कुटुम्बियों को मेरी आवश्यकता है और मुझे कुटुम्बियों की आवश्यकता है। जब बूढ़ा होता है तो बाल-बच्चे, पोते-पोती, नाते-रिश्तों को अभी मेरी आवश्यकता है। लेकिन हे राम ! जीव की अपनी यह आवश्यकता कि वह अपना उद्धार करे। तुम मेरे पुत्र राम भी हो, राजा राम भी हो और भगवान राम भी हो। तुम तो स्वयं त्रिकालदर्शी हो। तुम तो मोह हटाने की बात करो। तुम स्वयं मोह की बात कर रहे हो ?"

रामजी मुस्कराते हैं किः माँ ! तुम धन्य हो। पिता जी कहते थे कि भक्ति में, धर्म में तो तुम अग्रणी हो लेकिन आज देख रहा हूँ कि आत्मा-अनात्मा विवेक में और वैराग्य में भी तुम्हारी गति बहुत उन्नत है।"

श्रीरामचन्द्रजी ने कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी को एकान्तवास में भेजने की व्यवस्था की। श्रृंगी-आश्रम में कौशल्या माता ने साधना की। प्राप्ति में टिकी।

राम तो बेटा है जिनका, अयोध्या का राज्य, राजमाता का ऊँचा पद और साधन-भजन के लिए जितने चाहिए उतने स्वतंत्र कमरे। फिर भी कौशल्याजी प्रतीति में उलझी नहीं। प्राप्ति में ठहरने के लिए एकान्त में गई। एक में ही सब वृत्तियों का अंत हो जाय उस चैतन्य राम में विश्रान्ति पाने को गई।

तुलसीदास जी कहते हैं-

राम ब्रह्म परमारथ रूपा।

अर्थात् ब्रह्म ने ही परमार्थ के लिए राम रूप धारण किया था। अवधपति राम प्रकट हुए और हमें आचरण करके सिखाया कि उन्नत जीवन कैसे जीया जा सकता है। हर परिस्थिति में रामजी का ज्ञान तो ज्यों का त्यों है। कभी दुःख आता है कभी सुख आता है, कभी यश आता है कभी अपयश आता है, फिर भी रामजी ज्यों के त्यों हैं। कभी साधु-संतो से रामजी का सम्मान होता है तो कभी दुर्जनों से अपमान होता है। कभी कंदमूल खाते हैं तो कभी मोहनभोग पाते हैं। कभी महल में शयन करते हैं तो कभी झोंपड़ी में। कभी वस्त्र-अलंकार, मुकुट-आभूषण धारण

करते हैं तो कभी वल्कल पहनते हैं लेकिन रामजी का ज्ञान ज्यों का त्यों है। प्राप्ति में जो ठहरे हैं!

रामचन्द्रजी प्रतीति में बहे नहीं। श्रीकृष्ण प्रतीति में बहे नहीं। राजा जनक प्रतीति में बहे नहीं। हम लोग प्रतीति में बह जाते हैं। प्रतीति माने दिखने वाली चीजों में सत्यबुद्धि करके बह जाना। प्रतीति बहने वाली चीज है। बहने वाली चीज के बहाव का सदुपयोग करके बहने का मजा लो और सदा रहने वाले जो आत्मदेव हैं उनसे मुलाकात करके परमात्म-साक्षात्कार कर लो, बेड़ा पार हो जायेगा। दोनों हाथों में लड्डू हैं। प्रतीति में प्रतीति का उपयोग करो और प्राप्ति में स्थिति करके जीते जी मुक्ति का अनुभव करो।

हम लोग क्या करते हैं कि प्राप्ति के लक्ष्य की ओर नहीं जाते और प्रतीति को प्राप्ति समझ लेते हैं। यह मूल गलती कर बैठते हैं। दो ही बाते हैं, बस। फिर भी हम गलती से बचते नहीं।

अपने बचपन की एक बेवकूफी हम बताते हैं। एक बार हमने भी गुड्डा-गुडिया का खेल खेला था। उस समय होंगे करीब नौ दस साल के। हमारे पक्ष में गुड्डा था और हम बारात लेकर गये। गुड़ियावालों के यहाँ से उसकी शादी कराके लाये। पार्टीवार्टी का रिवाज था तो थोड़ा हलवा बनाया था, चने बनाये थे। छोटी छोटी कटोरियों में सबको खिलाया था। फंक्शन भी किया गुड्डे-गुड़िया की शादी में। बच्चों का खेल था सब।

फिर हमने कौतूहलवश उन गुड्डे-गुड़िया को खोला। ऊपर से तो रेशम की चुन्दड़ी थी, रेशम का जामा था और अन्दर देखो तो कपड़े के सड़े-गले गन्दे-गन्दे चिथड़े थे। और कुछ नहीं था। गुड़िया को भी देख लिया, गुड्डे को भी देख लिया। ये दुल्हा और दुल्हन ! है तो कुछ नहीं। भीतर चिथड़े भरे हैं।

ऐसे ही संसार में भी वही है। लड़का शादी करके सोचता है। मुझे गुड़िया मिल गई... लड़की शादी करके सोचती है मुझे गुड्डा मिल गया। मुझे राजा मिल गया... मुझे पटरानी मिल गई।

जरा ऊपर की चमड़ी का कवर खोलकर देखो तो राम.... राम ! भीतर क्या मसाला भरा है....! लेकिन राजी होते हैं कि मैंने शादी की। दुल्हा सोचता है मैं दुल्हा हूँ। दुल्हन सोचती है कि मैं दुल्हन हूँ। अरे भाई ! तू दुल्हा भी नहीं, तू दुल्हन भी नहीं। तू तो है आत्मा। वह है प्राप्ति। तूने प्रतीति की कि मैं दुल्हा हूँ।

जीव वास्तव में है तो आत्मा लेकिन प्रतीति करता है कि मैं जैन हूँ.... मैं अग्रवाल हूँ.... मैं हिन्दू हूँ..... मैं मुसलमान हूँ..... मैं सेठ हूँ... मैं साहब हूँ... मैं जवान हूँ... मैं बूढ़ा हूँ।

है तो आत्मा और मान बैठा है कि मैं विद्यार्थी हूँ। यह प्रतीति है। प्रतीति का उपयोग करो लेकिन प्रतीति को प्राप्ति मत समझो। वास्तविक प्राप्ति की ओर लापरवाही मत करो।

आज विश्व में जो अशांति और झगड़े हुए हैं वे केवल इसलिए कि हम प्रतीति में आसक्त हुए और प्राप्ति से विमुख रहे। कौमी झगड़े.... मजहबी झगड़े..... मेरे-तेरे के झगड़े। ऐसा नहीं कि हिन्दू और मुसलमान ही लड़ते हैं। मुसलमानों में शिया और सुन्नी भी लड़ते हैं। जैन-जैन भी लड़ते हैं। एक माँ-बाप के बेटे-बेटियाँ भी लड़ते हैं। आदमी नीचे के केन्द्रों में जी रहा है, प्रतीति की वस्तुओं में आसक्त हुआ है। सास और बहू लड़ती है। एक ही माँ-बाप के बेटे, दो भाई भी लड़ते हैं। हम लोग प्रतीति में उलझ गये हैं इसलिए लड़-लड़कर मर रहे हैं। हम लोग अगर प्राप्ति की ओर लग जायँ तो पृथ्वी स्वर्ग बन जाय।

विवेकानन्द बोलते थेः

"लाख आदमी में अगर एक आदमी आत्मारामी हो जाय, लाख आदमी में अगर एक आदमी प्राप्ति में टिक जाय तो पृथ्वी चन्द दिनों में स्वर्ग बन जाय।"

भगवान ऋषभदेव ने प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग दोनों का आचरण करके दिखाया और बाद में साबित कर दिखाया कि दोनों प्रतीति मात्र हैं। प्रवृत्ति भी प्रतीति है और निवृत्ति भी प्रतीति है। प्रकृति और निवृत्ति इन दोनों की सिद्धि जिससे होती है वह आत्मा ही सार है। उस आत्मा की ओर जितनी जितनी हमारी नजर जाती है उतना उतना समय सार्थक होता है। उतना उतना जीवन उदार होता है, व्यापक होता है, निर्भीक होता है, निर्द्वन्द्व होता है और निजानन्द के रस से परिपूर्ण होता है।

युद्ध के मैदान में श्रीकृष्ण बंसी रहे हैं, क्योंकि वे प्राप्ति में ठहरे हैं। रामचन्द्रजी कभी मोहनभोग पाते हैं कभी कन्दमूल खाते हैं फिर भी उद्विग्न नहीं होते, क्योंकि प्राप्ति में ठहरे हैं। विषम परिस्थितियों में भी रामचन्द्रजी मधुर भाषण तो करते ही थे, सारगर्भित भी बोलते थे। रामचन्द्रजी के आगे कभी कोई आकर बात करता था तो वे बड़े ध्यान से सुनते और तब तक सुनते थे जब तक कि सामने वाले का अहित न होता हो, चित्त कलुषित न होता हो, कान अपवित्र न होते हों। अगर वह किसी की निन्दा या अहित की बात बोलता तो रामजी युक्ति से उसकी बात को मोड़ देते थे। अतः यह गुण आप सबको अपनाना चाहिए।

रामचन्द्रजी की सभा में कभी-कभी दो पक्ष हो जाते किसी निर्णय देने में। रामचन्द्रजी इतिहास के, शास्त्रों के तथा पूर्वकाल में जिये हुए उदार पुरुषों के निर्णय का उद्धरण देकर सत्य के पक्ष को पुष्ट कर देते थे और जिस पक्ष मे दुराग्रह होता था उस पक्ष को रामचन्द्रजी नीचा भी नहीं दिखाते थे लेकिन सत्य के पक्ष को एक लकीर ऊँचा कर देते तो उसको पता चल जाता कि हमारी बात सही नहीं है।

हम घर में, कुटुम्ब में क्या करते हैं ? बहू चाहती है घर में मेरा कहना चले, बेटी चाहती है मेरा कहना चले, भाभी चाहती है मेरा कहना चले, ननद चाहती है मेरा कहना चले। सुबह उठकर कुटुम्बी लोग सब एक दूसरे से सुख चाहते हैं और सब एक दूसरे से अपना कहना मनवाना चाहते हैं। घर में सब लोग भिखारी हैं। सब चाहते हैं कि दूसरा मुझे सुख दे।

सुख लेने की चीज नहीं है, देने की चीज है। मान लेने की चीज नहीं है, मान देने की चीज है। हम लोग मान लेना चाहते हैं, मान देना नहीं चाहते। इसलिए झंझट पैदा होती है, झगड़े पैदा होते हैं।

मैं भी रानी तू भी रानी।
कौन भरेगा घर का पानी ?

सिन्धु घाटी के किनारे अनंत काल पूर्व, जिसका कोई सन् या संवत सिद्ध नहीं किया जा सकता, सृष्टि के साथ ही साथ वेद का ज्ञान प्रकट हुआ है। भगवान ऋषभदेव ने वैदिक ज्ञान का अमृतपान किया था। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों से छलांग मारकर आत्मा में आये थे। कोई बोलता हैः 'हम जैनी हैं, हम हिन्दू नहीं है।' जैनी अगर हिन्दू नहीं है तो जैनी जैनी भी नहीं हो सकता। कोई बोलता हैः 'हम भील है, हम हिन्दू नहीं हैं।' अरे भील अगर हिन्दू नहीं तो वह भील भी नहीं।

सिन्धु घाटी में सिन्धु नदी के किनारे भगवान वेदव्यास ने शास्त्रों का अनुवाद किया था।

आपके जब 432000 वर्ष पूरे होते हैं तब कलियुग पूरा होता है। 864000 वर्ष बीतते हैं तो त्रेतायुग पूरा होता है। द्वापर की अवधि 1296000 वर्ष की है। सतयुग 1728000 वर्ष का है। कुल मिलाकर 4320000 वर्ष बीतते हैं तब एक चतुर्युगी होती है।

खूब ध्यान देना इस बात पर।

ऐसी इकहत्तर चतुर्युगी बीतती है तब एक मन्वन्तर होता है। ऐसे चौदह मन्वन्तर बीतते हैं तब ब्रह्माजी का एक दिन होता है। तुम्हारे साठ साल बीतते हैं तो देवताओं के दो महीने बीतते हैं तुम्हारा एक साल बीतता है तो देवताओं का एक दिन व्यतीत होता है। जैसे तुम्हारा एक दिन बीतता है तो मच्छर और मक्खियों की तीन चौथाई जिन्दगी पूरी हो जाती है। तुम्हारा एक दिन बीतता है तो तुम्हारे रक्त के अन्दर जो कीटाणु है उनकी दसों पीढ़ियाँ बीत जाती हैं।

कीटाणुओं के आगे तुम ब्रह्माजी हो, मक्खियों के आगे तुम देवता हो और देवताओं के आगे तुम्हारी आयु ठीक ऐसी है जैसे तुम्हारे आगे मच्छर और मक्खियों की।

ब्रह्माजी के केवल एक दिन में ऐसे चौदह इन्द्र बदल जाते हैं। इस समय ब्रह्माजी की उम्र 50 वर्ष हो गई है। 51वें वर्ष का प्रथम दिन चल रहा है। प्रथम दिन का भी आधा हिस्सा समाप्त हुआ है। अभी यह सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है।

जो लोग कर्मकाण्ड करते हैं वे संकल्प करते समय बोलते हैं- 'सप्तम मन्वन्तरे जम्बू द्वीपे उत्तराखण्डे भारत देशे कलियुगे प्रथम चरणे....' आदि आदि...।

श्रीरामचन्द्रजी ने प्राप्ति में टिककर हमें ऐसा मार्ग बताया कि अभी भी उनके गुणों का गान करें तो हमारा जीवन-व्यवहार मधुर हो जाता है। सब मुसीबतें विदा होने लगती हैं।

कोई सौ-सौ बार रामचन्द्रजी का अपमान करे, बिगाड़े तो रामचन्द्रजी अपने चित्त में उद्विग्न नहीं होते थे। कोई सदगुणी सेवा करता था तो रामचन्द्रजी उसकी सेवा भूलते नहीं थे।

आपको अगर सुखी होना हो तो आपने जो भलाई की उसे भूल जाओ और दूसरे ने थोड़ी बुराई की उसे बिसार दो तो कुटुम्ब में आनन्द और शान्ति आ जायेगी। घर-घर में रामराज्य होने लगेगा।

हमारे घरों में क्या होता है ? सास ने कभी कुछ कह दिया, कुछ थोड़ी गड़बड़ कर दी तो बहू मौका ढूँढती रहती है और बहू ने कुछ कर दिया तो सास ऐसे मौके की तलाश में रहती है कि कभी न कभी इस चुड़ैल को सुना दूँगी। सास बहू को सुनाना चाहती है और बहू सास को सुनाना चाहती है। लेकिन सास और बहू दोनों अगर अपने अन्तरात्मा की आवाज एक दूसरे को सुना दे किः

तुझमें राम मुझमें राम सबमें राम समाया है।
कर लो सभी से प्यार जगत में कोई नहीं पराया है।।

....तो महाराज ! घर में रामराज्य हो जायगा। परिवार में रामराज्य हो जायगा।

एक बोलता है मैं अग्रवाल हूँ, दूसरा बोलता है मैं जैनी हूँ, तीसरा बोलता है मैं हिन्दू हूँ, चौथा बोलता है मैं मुसलमान हूँ, पाँचवाँ बोलता है मैं भील हूँ, छठा बोलता है मैं आर्य समाजी हूँ, सातवाँ बोलता है मैं फलाना हूँ।

अरे भाई ! 'मैं.... मैं.... मैं..'. ऐसा जो भीतर से हो रहा है उसमें सबमें एक-का-एक राम रम रहा है। तुमने तो सुन-सुनकर मान्यता बना ली है कि मैं फलाना भाई हूँ....।

'मैं फलानी माई हूँ.... मेरा नाम कांता... शांता.... ऊर्मिला... है' यह भी प्रतीति है और 'मेरा नाम छगन..... मगन.... मोहन है... मैं अग्रवाल हूँ...' यह भी प्रतीति है। प्राप्ति तुम्हारी आत्मा है। आत्मा सो परमात्मा।

मिलता तो परमात्मा है। बाकी जो मिलता है, सब धोखा मिलता है। 'मैं भील हूँ... मैं हिन्दू हूँ..... मैं गुजराती हूँ... मैं सिन्धी हूँ....' ये सब प्रतीति मात्र हैं, धोखा है। यह स्मृति जिसकी सत्ता से जागती है वह सर्वसत्ताधीश परमात्मा ही सार है, और सब खिलवाड़ है। इस खिलवाड़ को खिलवाड़ समझकर खेलो लेकिन इसको सच्चा समझकर उलझो मत।

समय की धार में सब 'मेरा-तेरा.... हैसो हैसो...' करते प्रवाहित हो जाता है। 'यह मकान मेरा है.... यह घर मेरा है.... यह मठ मेरा है... यह मंदिर मेरा है... रूपये मेरे हैं... गहने मेरे हैं... गाड़ी मेरी है....।' जिसका सब कुछ है वह परमात्मा तेरा है, बाकी सब धोखा है। यह बात समझ लेनी चाहिए, जीवन में उतारनी चाहिए।

आदमी जब आखिरी यात्रा करता है, रवाना होता है तब सब लोग क्या बोलते हैं पता है ? 'राम बोलो भाई राम।.... रामनाम संग है, संतनाम संग है।.... राम नाम सत्य है आखिर यही गत है।.....'

राम में ही तेरी गति है प्यारे ! बाकी और कहीं तेरी गति नहीं है। बाकी सब तो प्रतीति मात्र है, धोखा है।

रात को नींद में तुम स्वप्न देखते हो। बड़े साहब बन गये हो। कुर्सी पर बैठे हो। मूँछें ऐंठ रहे हो। ऑर्डर चला रहे हो। बड़ा ठाठ है लेकिन आँख खुली तो अपने आपको पलंग के कोने में पड़े हुए पाते हो। उस समय तो बड़ी प्राप्ति थी लेकिन आँख खुलने पर कुछ भी नहीं।

रात को स्वप्न में किसी से 'तू-तू मैं-मैं' हो गई, मुक्केबाजी हो गई, मुठभेड़ हो गई। पकड़े गये और चार-छः महीने की सजा हो गई। चार महीने सजा भोग ली, बाकी के दो महीने बड़ी मुसीबत में जा रहे हैं। अरे भगवान ! यह क्या हो गया ? ऐसा करके थोड़ा चिल्लाये तो आँख खुल गई। मम्मी ने पूछाः "क्यों चिल्ला रहा है बेटा !"

"अरे माँ ! मैं तो समझ रहा था कि मैं जेल में हूँ लेकिन मैं पलंग पर हूँ।"

...तो रात को स्वप्न में साहब होने की या कैदी होने की जो प्रतीति हो रही थी उस समय वह सच्ची लग रही थी। उस समय अगर आपसे कोई कहता कि यह तो सब प्रतीति है मात्र है तो उस समय आप उसकी बात नहीं मानते। आँख खुलने पर पता चलता है कि सब प्रतीति मात्र था। जागे तो प्राप्ति रही और प्रतीति खो गई। जिसकी सत्ता से हम स्वप्न देख रहे थे वह आत्मा तो रहा। जिस समय स्वप्न देख रहे थे उस समय भी वह था। स्वप्न बदल गया तब भी वह है। नया स्वप्न आयेगा तब भी होगा और कोई स्वप्न नहीं होगा तब भी यह आत्मदेव रहेगा ही।

....तो जो आया और गया वह सब प्रतीति मात्र था। सब प्रतीतियों के बीच जो सदा रहा वह प्राप्ति है। इस प्राप्ति में जग गये तो बेड़ा पार।

बचपन से लेकर अब तक कितने ही सुख आये दुःख आये, मित्र आये शत्रु आये लेकिन सब प्रतीति मात्र था।

अपने बचपन को याद करो। एक चवन्नी के लिए या चॉकलेट के लिए कितने कूदाकूद करते थे... रोते थे.... चिल्लाते थे ! चॉक्लेट मिल गई तो खुश। छोटा बच्चा काम करती हुई माँ का पल्लू पकड़कर पीछे पीछे घूमता है। माँ को हजार काम छुड़ाकर भी दिखाता हैः देख देख ! मैं क्या खा रहा हूँ ? चाकलेट खाकर दिखाता है, लोलीपॉप चाटकर दिखाता है। उस समय अपनी अल्प बुद्धि के कारण सोचता है कि मैं बहुत बड़ा साइन्टीस्ट हो गया हूँ। लोलीपॉप चाटने की तकनीक मुझमें आ गई है। बच्चा मम्मी को, पापा को कूदकर दिखाता है, दस बीस कदम दौड़कर दिखाता है। उस समय लगता है कि वाह ! बड़ी उपलब्धि कर ली। बड़ा होने पर कुछ नहीं। वह सब प्रतीति मात्र था।

जैसे बचपन में ये लोलीपॉप चाटने की या चाकलेट खाने की कला तुम बड़ी कला समझते थे ऐसे ही दुनिया भर की सारी कलाएँ चाकलेट खाने जैसी ही कलाएँ हैं, कोई बड़ी कला नहीं है। सब प्रतीति मात्र है, पेट भरने की कलाएँ हैं। धोखा है धोखा। कितना भी कमा लिया, कितना भी खा लिया, पी लिया, सुन लिया, देख लिया लेकिन जिस शरीर को खिलाया-पिलाया, सुनाया-दिखाया उस शरीर को तो जला देना है।

कर सत्संग अभी से प्यारे
नहीं तो फिर पछताना है।
खिला-पिलाकर देह बढ़ाई
वह भी अग्नि में जलाना है।।

सत्संग की बड़ी महिमा है कि वह प्रतीति के संस्कारों की पोल खोल देता है और प्राप्ति के संस्कारों को जगा देता है। सत्संग तो भगवान शिव भी करते थे। श्री रामचन्द्रजी अगस्त्य ऋषि के आश्रम में सत्संग हेतु जाते थे। बाल्य काल में जब गुरु-आश्रम में रहते थे तब विद्याध्ययन के साथ-साथ सत्संग भी करते थे। धनुर्विद्या सीखते थे तब उससे भी समय बचाकर रामजी प्राप्ति में ठहरने वाले सत्संग की बातें सुनते थे। चौदह साल के वनवास के दौरान भी वे ऋषि-मुनियों के आश्रम में सत्संग हेतु जाया करते थे। वनवास से लौटते समय पुष्पक विमान से उतर कर भरद्वाज ऋषि के आश्रम में गये। अयोध्या में राजगद्दी सँभालने के बाद भी सत्संग बराबर जारी रहा। प्राप्ति तो आत्मज्ञान है, आत्मा-परमात्मा है यह प्रजा को समझाने के लिए। उनके दरबार में सत्संग हुआ करता था। राजा जनक के दरबार में सत्संग हुआ करता था। राजा अरबपति, राजा सव्यकृत के दरबार में भी सत्संग हुआ करता था। हम तो चाहते हैं कि आपके दिल में व्यवहार काल में भी सत्संग हुआ करे।

एक घण्टा काम किया। फिर एक दो मिनट के लिए आ जाओ इन विचारों में किः 'अब तक जो कुछ किया, जो कुछ लिया, दिया, खाया, पिया, हँसे, रोये, जो कुछ हुआ सब सपना है.... केवल अन्तर्यामी राम अपना है। हरि ॐ तत्सत्.... और सब गपशप।' तुम्हारा बेड़ा पार हो जायेगा। तुम्हारी मीठी निगाहें जिन पर पड़ेंगी वे खुशहाल होने लगेंगे।

ऐसे आत्मदेव को पा लो। कब तक इस संसार की भट्ठी में अपने आपको जलाते रहोगे, तपाते रहोगे ? कब तक चिन्ता के दौरे में घूमते रहोगे ? अब बहुत हो गया।

व्यवहार करते-करते आधा घण्टा बीते, एक घण्टा बीते तो आ जाओ अपने आत्मदेव में। ज्यों-ज्यों मोह कम होगा त्यों-त्यों प्रतीति का सदुपयोग ठीक होगा।

प्राप्ति और प्रतीति कह दो, राम और माया कह दो, आत्मा और आत्मा की आह्लादिनी शक्ति कह दो तो भी ठीक है। शब्दों के चक्कर में मत पड़ना। असलियत जानने की कोशिश करना। जब असलियत समझ में आ जाती है तो कोई दुराग्रह नहीं रहता। 'मैं जैन हूँ.... मैं मुसलमान हूँ....' ऐसी पकड़ नहीं रहती। मुसलमान के कुल में पैदा हुआ तुम्हारा शरीर है, हिन्दू के कुल में पैदा हुआ तुम्हारा शरीर है, जैन के कुल में पैदा हुआ तुम्हारा शरीर है। इस शरीर के कुल के अनुसार सब प्रतीतियाँ होती हैं। तुम तो परमात्मा के कुल के हो। तुम्हारी जात खुदा की जात है। तुम्हारी जात परमात्मा की जात है। शरीर की जात कुल की जात है।

बचपन के शरीर के कण-कण बदल गये, बचपन की बुद्धि बदल गई, बचपन का मन बदल गया, बचपन के दोस्त बदल गये लेकिन बचपन में मन ऐसा था, बचपन में बुद्धि ऐसी थी

यह जाननेवाला आत्मा नहीं बदला। 'बचपन में मेरी बुद्धि ऐसी थी...' ऐसा कहने वाला नहीं बदला। अगर वह बदल जाता तो बदलने का पता किसको चलता ?

आसुमल नगरसेठ का बेटा था। जब वह नन्हा मुन्ना था तब पिता जी ने उसके लिए हीरे जड़ित कमीज बनवायी थी। वह कमीज पहनकर आसुमल वट मारता था कि देखो, मेरी कमीज कितनी चमाचम चमक रही है ! रात को आकाश में देखा तो तारे टिमटिमाते थे। आसुमल ने सोचा कि वहाँ भी किसी नगरसेठ के बेटे ने हीरे जड़ित कमीन पहन रखी होगी। उसके भी हीरे टिमटिमा रहे हैं। वह उसको बोलता कि तेरे पास ऐसी कमीज है तो देख, मेरे पास भी है।

अब वह कमीज मैं खोजूँगा तो भी नहीं मिलेगी, न जाने कहाँ गई और बचपन भी बीत गया। बचपन के शरीर का कण-कण बदल गया। सात साल में पूरा शरीर बदल जाता है। तुम रोज नया खाते हो और पुराना निकालते हो। ऐसा करते-करते शरीर के सब कोष बदल जाते हैं।

शरीर के कण बदल गये, मन का चिन्तन बदल गया, बुद्धि की बेवकूफी बदल गई, शरीर का छोटापन बदल गया। फिर भी कोई एक है जो नहीं बदला। जो नहीं बदला वही तो जानता है सारी बदलाहट को। 'बचपन में ऐसी कमीज थी.....' ऐसा जो जानता है वही है आत्मा। जो बदल गया वह है माया। जो नहीं बदला वह है राम।

राम, लक्ष्मण और सीता जी वनगमन कर रहे हैं। उनका वर्णन करते हुए तुलसीदास जी कहते हैं-

आगें रामु लखनु बने पाछें।
तापस बेष बिराजत काछें।।
उभय बीच सिय सोहति कैसें।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसें।।

आगे राम और पीछे लक्ष्मण। दोनों के बीच सीता जी हैं। ऐसे ही आगे ब्रह्म है, पीछे जीव है। बीच में प्रतीति रूपी सीता है। इन दोनों के बीच जो प्रतीति है उसको प्रतीति समझकर उसका सदुपयोग कर लो और प्राप्ति में टिक जाओ। प्राप्ति ही सत्य है, प्रतीति केवल सपना है। तुलसीदास जी रामायण में शिवजी के द्वारा कहलवाते हैं-

उमा कहूँ मैं अनुभव अपना।
सत्य हरिभजन जगत सब सपना।।

प्रतीतिवश तुम अपने को भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के मानते हो। यह तुम्हारे मन की मान्यता है। असलियत में तुम आत्मा हो.... रोम-रोम में रमने वाले राम हो... तुम चैतन्य हो।

"मैं ब्राह्मण हूँ...।'

अरे काहे के ब्राह्मण ? ब्राह्मण तुम्हारा शरीर है। तुम्हारे दिल में तो राम रम रहा है। दिल में अगर राम नहीं है तो तुम ब्राह्मण भी नहीं हो। तुम्हारा राम के साथ सम्बन्ध टूट जाये तो तुम ब्राह्मण भी नहीं। फिर तो जला देंगे मुरदा समझकर। राम बोलो भाई राम।

जिसकी चेतना से तुम्हारा हृदय स्पन्दन करता है वह राम पहले तुम्हारे हृदय में है तब तुम ब्राह्मण। तुम्हारे हृदय में राम है तब तुम जैन। तुम्हारे हृदय में राम है तब तुम हिन्दू। तुम्हारे हृदय में राम है तब तुम मुसलमान।

तुमने सुन-सुनकर मान रखा है कि 'मैं जैन हूँ....मैं बनिया हूँ.... मैं हिन्दू हूँ... मैं मुसलमान हूँ.... मैं भाई हूँ.... मैं माई हूँ....।' यह सब प्रतीति है। इसका व्यवहार में उपयोग करो। हमारा कोई विरोध नहीं है। हम तो सबको अपनी आत्मा मानते हैं। हम सबको प्रणाम करते हैं। हम शरीर का अनादर नहीं करते लेकिन तुम शरीर नहीं हो यह समझने का मेरा प्रयास है। शरीर तुम्हारा साधन है। इस साधन को कैसे ठीक रखना यह भी हम बताते हैं।

तुम्हारा शरीर तन्दुरुस्त कैसे रहे ? इसके लिए कब खाना, क्या खाना, कैसे खाना यह जान लोगे तो शरीर भी तन्दुरुस्त रहेगा और व्यवहार में आनन्द आयेगा। हररोज सूर्योदय से पहले शरीर को मर्दन करके स्नान कर लो। प्राणायाम करो, योगासन करो। सत्त्वगुण बढ़ेगा। शरीर मजबूत बनेगा।

भोजन करते समय पैर गीले करके भोजन करो लेकिन सोते समय पैर गीले नहीं होने चाहिए।

रात्रि में सोते समय पूर्व अथवा दक्षिण की तरफ सिर करके सोओगे तो तुम्हारी उमरिया लम्बी होगी। शरीर तन्दुरुस्त रहेगा। अगर तुम पश्चिम या उत्तर दिशा की तरफ सिर करके सोते हो तो तुम्हारे मस्तिष्क में शिकायत रहेगी, शरीर में बीमारी रहेगी। अपमृत्यु का भय रहेगा।

तुम अपने को कुछ भी मानो भैया ! लेकिन कम-से-कम अपना शरीर तो तन्दुरुस्त रखो।

अपने को तुम जैन मानते हो... हमें आनंद है। अपने को तुम कुछ भी मानते हो, हमें कोई आपत्ति नहीं लेकिन कम-से-कम इतना तो समझ लो कि ये सब तुम्हारी मान्यताएँ है। अपने वास्तविक स्वरूप को भी जान लेने की हिम्मत जुटाओ न भाई !

तुम्हारा शरीर तन्दुरुस्त रहे, मन प्रसन्न रहे ऐसी कुछ बातें जान लो। मन को प्रसन्न बनाने के लिए उदार जीवन जियो। संकीर्णता को छोड़ो। हृदय को विशाल बनाओ। मन को खुश रखने का प्रयास करो।

तुम्हारी बुद्धि में अन्दर का प्रकाश आना चाहिए। जिसकी सत्ता से आँखे देखती हैं, जिसकी शक्ति से कान सुनते हैं, जिसकी शक्ति से दिल धड़कता है उस शक्तिदाता में अपनी बुद्धि को कभी-कभी विश्रान्ति देने का प्रयोग करो। तुम्हारा तन तन्दुरुस्त रहे, मन प्रसन्न रहे और बुद्धि में आत्म-प्रकाश हो जाय.... फिर तुम अपने को कुछ भी मानते रहो, हमें आनन्द है। हमें कोई आपत्ति नहीं है भैया ! संत तो सबके होते हैं। जैसे, सूरज का प्रकाश सबके लिये होता है, चाँद की चाँदनी सबके लिए होती है, ईश्वर की हवाएँ सबके लिए होती हैं। ऐसे ही संत की वाणी संत का अनुभव सबके लिए होता है। संत सबके होते हैं।

जाति न पूछिये संत की पूछ लीजिए ज्ञान।

मोल करो तलवार का, पड़ी रहने दो म्यान।।

मीराबाई के गुरु कौन थे ? संत रैदास। रैदासजी का धन्धा चमार का था लेकिन दिल ? दिल तो राम में रंगा हुआ था।

राम के रंग के बिना और सब किया तो क्या किया ? आदमी हाड़-मांस के, चमड़े के शरीर को पालते-पोसते, खिलाते-पिलाते अक्ल-होशियारी लगाते लगाते कितना भी संसार रूपी दुकानदारी चलाता है। आखिर तो पैसा कमाकर इस हाड़-मांस के शरीर को ही पोसता है, और क्या करता है ? लोगों के सामने तो बड़ा साहब बनता है, रोब दिखाता है लेकिन घर जाकर तो मेम साहब के आगे गिड़गिड़ाता है, विषय-सुख में लट्टू होता है।

जिस तरह की लगन स्त्री-सुख में होती है, जिस तरह की लगन प्रेमी अपनी प्रेमिका में रखता है ठीक ऐसी ही लगन, ऐसी ही प्रीति अगर प्रभु चरणों में हो जाये तो आदमी प्रतीति से निकलकर प्राप्ति रूप परमात्मा में स्थिर हो सकता है। इसमें लेश मात्र संदेह नहीं है। एक बार आजमाकर तो देखो कि पीर-पैगम्बर, संत-महात्मा यूँ ही चिल्लाते रहते हैं या वाकई कोई दम भी है उनकी हिदायतों में... उनके वचनों में ?

एक बार की सच्ची घटित घटना आँखों देखी सुनाता हूँ। घटना है तो बड़ी घटिया और आप लोग भी सिनेमा इत्यादि में आये दिन देखते ही होंगे। शायद यहाँ सुनकर आपको इससे कुछ लाभ मिले।

हम अमेरिका गये हुए थे। वहाँ एक ही दिन में तीन-तीन चार-चार अलग-अलग प्रांतों में सत्संग-प्रवचन होते थे। प्रायः चार्टर्ड प्लेन में यानि स्पेशल हवाई जहाज में यात्रा करने की होती थी। कभी-कभी साधारण हवाई जहाज में भी यात्रा करने का मौका आया। पाँच सौ या हजार कि.मी. पर हवाई जहाज रुकता था। डेढ़ सौ दौ सौ लोग और भी होते थे। कुछ स्त्री-पुरुष, कुछ अकेले पुरुष, कुछ अकेली स्त्रियाँ।

स्त्रियाँ अपने साथ एक पर्स हमेशा रखती थीं। उसमें कुछ श्रृंगार का सामान जैसे पावडर, आईना, तेल, आँखों की भौहों पर लगाने का सामान, गाल-ओठों पर लगाने की लाली-लिपस्टिक आदि सब होता था। जब उन स्त्रियों का गन्तव्य स्थान आने लगता था तो वे अपने पर्स से आईना निकाल कर मुँह देखती, आँखों की भौहों पर कुछ लगाती, चेहरे पर पावडर लगाती। यहाँ तक तो ठीक है। फिर गोल-गोल लम्बा-लम्बा लाल केमिकल जिसको लाली बोलते हैं वह निकालती और मुँह से थूक और लार का मिश्रण करके वह लाली गाल पर रगड़ती। लाली में एक तो होता है केमिकल, और दूसरा होता है पशुओं का खून। तीसरा, उसकी लार में मरे हुए बेक्टेरिया (कीटाणु)।

हवाई जहाज के उतरने पर जब उसका पति या प्रेमी उसको लेने आता था तो उसको चुम्बन लेने लग जाता था। उस समय मुझे दिल में लगता था किः अरे रे रे...! इतना बड़ा साहब कितना बेवकूफ गधा ! थूक, लार, केमिकल और पशुओं के खूनवाला चमड़ा चाट रहा है सुख के

लिए ! इससे तो आत्मरस ले ले, ध्यान रस ले ले। समता का रस पी ले। तू यह क्या करता है ? इतना पढ़ा-लिखा होकर बेवकूफी में थूक चाट रहा है ? टाई वाई पहना हुआ है.... अच्छा, गोरा, चिट्टा छः फुट का लम्बा... इतनी अक्ल नहीं कि क्या चाट रहा है !

आदमी अपने आपको पढ़ा लिखा, अक्लवाला, बुद्धिमान मानता है फिर भी ओंठ और गाल पर केमिकल और थूक है इतना तो वह भी जानता है लेकिन क्षणिक सुख के लिए वह कैसा अनर्थ कर बैठता है। प्रतीति में उलझ जाता है। चमड़े थूक और केमिकल में मजा लेता है। अगर थूक में मजा होता तो वह स्त्री पहले से ही मजे मे आ जाती, थूक तो उसके मुँह में पहले से ही पड़ी थी।

जैसे कुत्ता हड्डी चबाता है और उसके दाँतों से, मसूड़ों से खून निकलता है। अज्ञानवश वह समझता है कि हड्डी में से वह मिल रहा है, रस आ रहा है। अज्ञानवश वह समझता है कि हड्डी में से वह मिल रहा है, रस आ रहा है। ऐसे ही आदमी के अन्दर रस तो राम का है लेकिन हाड़-मांस चाटकर समझता है कि वहाँ से मजा आ रहा है।

जो स्त्री-पुरुष एक दूसरे से ज्यादा कामुकता से मिलते हैं वे शत्रु हैं। बल, बुद्धि, तेज, तन्दुरुस्ती और आयुष्य क्षीण करने में लगे हैं।

सुकरात के पास एक नवविवाहित दुल्हा गया और प्रार्थना की किः "गुरु महाराज ! आप आज्ञा करें की हम संसार में कैसे जियें ?"

सुकरात बोलेः "जीवन भर से एकबार संसार व्यवहार कर। जीवन में एकबार नहीं तो साल में एकबार।"

"उससे भी संतोष नहीं मिले तो ?" युवक ने पूछा।

"छः महीने में एक बार।"

"उससे भी थोड़ा जल्दी चाहिए तो ?"

"तो तीन महीने में एकबार।"

"तीन महीने भी नहीं रह सके तो ?"

"महीने में पाँच दिन बीत जाय फिर अमावस्या, एकादशी, श्राद्धपक्ष और पूनम छोड़कर सातवें दिन, नौवें दिन, ग्यारहवें दिन, मासिक धर्म के छः दिन छोड़कर महीने में एकबार।"

"महाराज ! महीने में एक दिन से संतोष न हो तो ?"

सुकरात ने कहाः "फिर ऐसा करो, बाँस की वह सीढ़ी (ननामी) बनाकर तैयार रख लो, फिर चाहे प्रतिदिन करो। आँखों की रोशनी कमजोर हो जायेगी और बेटों को भी चश्मा जल्दी आ जाएँगे। तुम अगर बचपना करोगे काम-विकार में तो तुम्हारे बच्चों की भी कमर झुक जायेगी, कमजोर हो जायेगी। सबका सत्यानाश करोगे और तुम्हें अर्थी की जल्दी आवश्यकता पड़ेगी।"

आदमी में चतुराई तो है लेकिन वह चतुराई से ठगी करके ऐश-आराम पाना चाहता है, सुखी होना चाहता है और सुख के बदले में दुःख-दर्द पैदा कर लेता है। सच्ची चतुराई तो यह है कि वह प्राप्ति में टिक जाय, अन्दर के आत्मरस में टिक जाय।

बाप बेटे से बोलता हैः तू जरा ग्राहक को निपट ले। सच्चा बाप तो वह होता है जो मौत से निपटने की कला बता दे। इसलिए तो कहते हैं कि जीव का सच्चा बाप तो सदगुरु होते हैं। शरीर के माँ-बाप तो बाहर के होते हैं लेकिन आत्मा-परमात्मा की जागृति के माई-बाप तो भगवान और भगवान के प्यारे संत होते हैं जो मनुष्य को प्रतीति से ऊपर उठाकर प्राप्ति में डालते हैं।

दीक्षा तीन प्रकार की होती है। एक होती है मांत्रिक दीक्षा, दूसरी होती है शांभवी दीक्षा और तीसरी होती है स्पर्श दीक्षा। ब्रह्मवेत्ता गुरुदेव अपने परमात्म-भाव में बैठकर शिष्य को वैदिक मंत्र देते हैं। शिष्य जिसे केन्द्र में रहता है उस केन्द्र में जाने की कला जानने वाले गुरुदेव वहाँ बैठकर जब गुरुमंत्र देते हैं तो शिष्य के स्वभाव में रूपान्तर होता है। दीक्षा से शिष्य को कुछ न कुछ अनुभव हो जाना चाहिए। उसी समय नहीं तो दो चार दिन के बाद कुछ न कुछ तो होना ही चाहिए। पानी पिया तो प्यास बुझेगी ही, भोजन खाया जो भूख मिटेगी ही सूरज निकला तो अन्धकार मिटेगा ही। ऐसे ही मंत्र मिला तो पाप मिटने का अनुभव होगा। हृदय में रस का अनुभव होगा।

गुरु लोभी शिष्य लालची दोनों खेले दाव।
दोनों डूबे बावरे चड़े पत्थर की नाव।।
आगे गुरु पीछे चेला दे नरक में ठेलम ठेला।।

ऐसे गुरु तो दुनियाँ में कई मिल जाते हैं लेकिन रामानन्दजी जैसे सदगुरु और कबीर जी जैसे सत् शिष्य, अष्टावक्रजी जैसे सदगुरु और जनक जैसे सत् शिष्य, शुकदेवजी जैसे सदगुरु और परीक्षित जैसे सत् शिष्य जब मिलते हैं तब काम बन जाता है। रामकृष्णजी जैसे सत् शिष्य और तोतापुरी जैसे सदगुरु, विवेकानन्द जैसे सत् शिष्य और रामकृष्ण जैसे सदगुरु हों तब काम बन जाता है।

रामकृष्ण परमहंस को तो कई शिष्य मानते थे लेकिन शिष्यों की जितनी योग्यता थी उसके अनुसार उनको लाभ मिला। लाभ तो सबको अवश्य मिलता है। बरसात कैसे होती है हम सब जानते हैं। सूरज की तपन से सागर का पानी वाष्पीभूत होता है। पानी वाष्प बनकर ऊपर जाता है, बादल बनते हैं, ठण्डे होकर बरसात के रूप में बरसते हैं।

सागर का पानी अगर स्वाति नक्षत्र में बरसात बनकर गिरता है और इसकी एक बूँद सीप के मुँह में पड़ जाती है तो सागर के गर्भ में जाकर समय पाकर वह बूँद मोती बन जाती है। है तो सागर का पानी। लेकिन बादल के जरिये जब बरसता है तो मोती में परिवर्तित हो जाता है, क्योंकि पात्र सीप मिल गई और स्वाति नक्षत्र का संयोग मिल गया।

ऐसे ही अमर स्वाति नक्षत्र रूपी सदगुरु हों और सीप रूपी सत् शिष्य हो तो यहीं संसार रूपी सागर की बातें लेकर संसार के गर्भ में ही शिष्य के हृदय में परमात्मा रूपी मोती पका सकते हैं वे महापुरुष।

है तो सागर का पानी। बादल बनकर बरसता है तो कहीं गंगा बनता है कहीं यमुना, कहीं नर्मदा बनता है कहीं गोदावरी, कहीं और कोई नदी कहीं नाला, कहीं सरोवर कहीं बाँध। वही पानी सागर में बरसता है तो खारा बन जाता है और स्वाति नक्षत्र में सीप के मुँह में पड़ता है तो मोती बन जाता है।

किसी सत्संग समारोह की पूर्णाहुति करते समय एक राजनेता ने घोषणा कीः "सब धर्मों का ज्ञान देनेवाले, दिव्य भक्ति, योग, ज्ञान से परिपूर्ण गुरु महाराज पूज्यपाद संत श्री आसारामजी महाराज का प्रवचन सुनकर हम लोग पवित्र हुए। लेकिन इस आयोजन को तो मैं सफल तब मानूँगा कि जब सब लोग पू. बापू की बातों पर अमल करें.......।"

मैंने देखा कि यह गड़बड़ कर दी। सब लोग अमल नहीं करेंगे तो क्या आयोजन व्यर्थ हो गया ? मैंने उनको रोककर कहाः

"सत्संग तो बरसात है। बरसात का जल सीप के मुँह में गिरे तब भी सफल है और किसी पहाड़ी पर गिरे तब भी सफल है। बरसात कभी व्यर्थ नहीं जाती। और जगह तो ठीक लेकिन डामर की सड़क पर जहाँ कोई खेती वेती नहीं होती वहाँ बरसात पड़ती है तो गोबर और डीजल के दाग तो धुलते ही हैं। ऐसे ही कठोर हृदय पर भी सत्संग की बरसात पड़े तो पाप के दाग धुलते हैं।"

सत्संग का आयोजन तो सफल होगा। लोग अमल करें तो मोती पकायें। अमल नहीं भी करें तो दिल रूपी सड़क तो साफ हो ही गई भैया ! आयोजन सफल ही है।

जरूरी नहीं कि सब के सब लोग अमल करके भगवान का साक्षात्कार कर लें। भगवान का साक्षात्कार कर लें तो बेड़ा पार है और नहीं भी करें, केवल सुनते हैं तो भी हृदय कोमल बनता है। अहंकार रूपी डीजल के दाग धुलते हैं, मोह रूपी गोबर धुलता है। दिल अगर कठोर भी होता है तो उसमें कुछ न कुछ तो फर्क पड़ जाता है। कुछ न कुछ तो स्वच्छ हो ही जाता है।

सत्संग रूपी अमृत कठोर दिल रूपी सड़क पर गिरता है तो भी काम करता है और खेड़ी हुई ऊर्वरा भूमि की तरह भक्ति भाव के संस्कारों से युक्त हृदय पर सत्संग-अमृत की वृष्टि होती है तो भगवद भक्ति के फल उगते हैं। अगर ज्ञान के संस्कारवाले दिल पर सत्संग की बरसात होती है तो वहाँ ज्ञान रूपी फल लगते हैं। योगाभ्यासी के हृदय में योगसिद्धि रूप फल लगते हैं। सत्संग कभी व्यर्थ नहीं जाता। इसीलिए तुलसीदासजी कहते हैं-

एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साध की हरे कोटि अपराध।।

एक आदिवासी लड़का था। उसको सत्संग का रंग लग गया। वह था तो गरीब लेकिन भगवान गरीबी अमीरी थोड़े ही देखते हैं ! वे तो दिल देखते हैं दिल !

बीस-पच्चीस साल का वह लड़का सिर पर माल ढोने की मजदूरी करता था। उसने ऐसा नियम ले रखा था कि जो मेरी बात सुनेगा, जन्म-जन्म की मजदूरी उतारनेवाला सत्संग सुनेगा अथवा मुझे सुनायेगा उसी का बोझ मैं उठाऊँगा।

जो प्रतीति से थोड़ा ऊपर उठ चुका हो और प्राप्ति के मार्ग की ओर अग्रसर हो उसका नियम बड़ी मुश्किल से टूटता है।

लोग बाजार में घरेलू सामान खरीदने आते थे। उस समय यांत्रिक वाहन आदि का जमाना नहीं था। मजदूर लोग सिर से सामान ढोते थे। वह लड़का ऐसा ही सामान ढोने का काम किया करता था। वह बेचारा मजदूरी तो करता था लेकिन हर समय उसके दिल में 'राम राम राम' का अजपाजाप चला करता था, क्योंकि वह तो प्रतीति से प्राप्ति की ओर अग्रसर था। प्रतिदिन सुबह शाम भगवान का स्मरण करके उसका हृदय पवित्र हो गया था। दिखने में तो बाहर से वह गरीब दिखता था लेकिन भीतर में उसे रामनाम का खजाना प्राप्त था।

एक सेठ को सामान लेकर घर जाने की जल्दी थी। लड़के को देखकर सेठ ने बुलाया और जल्दी-जल्दी सामान ले चलने को कहा। लड़के ने सामान उठाया और सेठ के साथ चल पड़ा। रास्ते में चलते-चलते उसे याद आया कि अरे ! शर्त रखना तो भूल ही गया ! सेठ जी को रोकाः

"सेठ जी ! आपसे एक शर्त रखना भूल गया। मैं उसी का सामान उठाता हूँ जो मुझसे भगवद कथा सुने या सुनाये।"

सेठ जी को जल्दी थी। सोचाः लड़का नादान है। बोलेः "भाई ! मुझे तो कथा वथा आती नहीं। तू ही सुनाता चल।"

रास्ते में लड़का कथा सुनाता रहा। घर पहुँचे। लड़के ने सामान रखा और पूछाः

"सेठ जी ! कथा कैसी लगी ?"

"अरे ! तू तो बड़ा भोलाभाला है। मुझे तो अपना काम करवाना था. मैंने तो तेरी कोई कथा वथा नहीं सुनी। सिर्फ 'हाँ... हूँ...' करता आया।"

लड़के ने सोचाः अरे भगवान ! सेठ के पास पैसा तो है लेकिन भक्ति नहीं है। यह तो कोई अभागा है। पापी लगता है। जिसको सत्संग नहीं भावे, भगवान की कथा नहीं भावे उसे तो पापी ही कहूँगा।

लड़के ने थोड़ा अपने भीतर गोता लगाया। प्रतीति से थोड़ा प्राप्ति में पहुँचा। एक मिनट का ध्यान करके पता लगा लिया कि सेठ का कब क्या होने वाला है। वह सेठ से बोलाः

"सेठ ! कल का तुम्हारा आखिरी दिन है। कल शाम को तुम्हारे हृदय में थोड़ा दुःखेगा और तुम इस दुनिया से सदा के लिए विदा होगे।"

"अरे क्या बोलता है छोकरे !" सेठ को उसकी बात में कुछ दम लगा क्योंकि उसकी यह बात उसके अन्तरात्मा से निकली थी। सेठ ने कहाः

"बैठ बेटा ! बैठ। चाय वाय पी। बिस्कुट खा। अपनी थकान उतार।"

लड़का बोलाः "सेठजी ! ऐसा नहीं है कि आप मुझे चाय वाय पिलाएँ, बिस्कुट आदि खिलाएँ और मौत टल जाये। वहाँ कोई रिश्वत आदि नहीं चलती।"

"बेटे ! कोई उपाय बताओ।"

"उपाय तो मैं बता सकता हूँ फिर भी आपको मरना तो पड़ेगा। मरने के बाद आप सुखी रह सको ऐसा कुछ उपाय मैं आपको बता सकता हूँ।"

उस भक्त लड़के ने सेठ को कुछ रहस्य समझा दिया। दूसरे दिन शाम को सेठ के हृदय में थोड़ा दर्द उठा और सेठ जी चल बसे।

किसी न किसी निमित्त से हर किसी को एक न एक दिन जाना ही पड़ेगा। है कोई ऐसा जो दावे के साथ कह दे कि मैं नहीं मरूँगा ? शादी नहीं करूँगा ऐसा कह सकते हो, परदेश नहीं जाऊँगा ऐसा कह सकते हो, नौकरी करूँगा या नहीं करूँगा ऐसा कह सकते हो लेकिन मरूँगा नहीं ऐसा कोई नहीं कह सकता। है कोई ऐसा कहने वाला ? सबकी मृत्यु पक्की है, बाकी सब कच्चा है।

मरो मरो सब कोई कहे मरना न जाने कोई।
एक बार ऐसा मरो कि फिर मरना न होई।।

वह लड़का कुछ सीखा हुआ था अपने गुरु से। प्राप्ति के अर्थात् अन्तर्यामी परमात्मा की प्राप्ति के करीब था। बैखरी वाणी से मध्यमा, पश्यन्ति और परा के नजदीक पहुँचा हुआ था। बाहर से तो गरीब था लेकिन भीतर से वह कुछ और था। भक्ति-प्रभुध्यान का धन था उसके पास।

लड़के ने जैसा बताया था ऐसा ही सेठ ने यमपुरी में जाकर किया। यमराज के पास पहुँचने पर चित्रगुप्त ने कहाः "इसने जन्म भर पाप किये हैं। पुण्य मात्र इतना ही है इसने एक घंटे का सत्संग किया है, भगवद कथा का श्रवण किया है।"

यमराज सेठ से बोलेः "तुम्हें पहले अपने पुण्य का फल भुगतना है या पहले पाप का फल भुगतना है ? तूने बीड़ी-सिगरेट पिया, दारू पिया, मांस खाया, दूसरों का दिल दुःखाया, और भी न जाने क्या क्या पाप किये हैं। इसके लिए तुम्हें नरक में जाना पड़ेगा। फिर बैल होना पड़ेगा, कुत्ता, गधा, बिल्ला, आदि होना पड़ेगा। तो पहले पुण्य का फल दें कि पाप का ?

सेठ को उस लड़के ने बताई हुई बात याद थी। वह बोलाः "मैं पाप का फल तो भोग लूँगा लेकिन मुझे पुण्य का फल नहीं भोगना है।"

यमराज ने सोचा कि ऐसा केस तो यहाँ पहला ही है। यह पहला आदमी है जो अपने पुण्य का फल भोगना नहीं चाहता। वे बोलेः

"तू पुण्य का फल भोगना नहीं चाहता तो क्या चाहता है ?"

"मैं पुण्य का फल भोगना नहीं देखना चाहता हूँ।"

यमराज सोच में पड़ गये। सत्संग से जो पुण्य अर्जित होता है उसे भोगा जाता है। यह जीव फल देखना चाहता है। अब क्या किया जाय ? यहाँ का ऐसा कोई कायदा नहीं है। समस्या खड़ी हो गई। चलो, इन्द्रदेव के पास जायें। वहाँ कुछ हल मिल जाये। उधर कोई कायदा बना हो तो देखें।

यमराज सेठ को लेकर पहुँचे इन्द्रदेव के पास और बोलेः "यह प्राणी सत्संग का फल भोगना नहीं देखना चाहता है।"

इन्द्र ने भी देखा कि हमारे पास ऐसा कोई सर्कुलर या नियम नहीं आया है कि सत्संग का फल इसे दिखाया जा सके। इन्द्र ने कहा कि चलो इसे आदिनारायण भगवान विष्णु के पास, मूल पुरुष के पास ले चलें।

चित्रगुप्त, यमराज और इन्द्रदेव उस सेठ को बड़े आदर के साथ ले गये और विनम्र हाथ जोड़कर बोलेः

"महाराज ! इस व्यक्ति ने हमें बड़े धर्मसंकट में डाल दिया है। यह सत्संग द्वारा अर्जित पुण्य का फल भुगतना नहीं देखना चाहता है।"

भगवान आदिनारायण ने उस पर दृष्टि डाली और अपने प्राप्ति स्वभाव में पहुँचकर देखा कि मेरे उस गरीब भक्त लड़के ने इसको कान में फूँक मार दी है, युक्ति बतायी है। इसी से दो घड़ी के पुण्य फल की वजह से मुझे प्रत्यक्ष देख रहा है। प्रभु ने चित्रगुप्त, यमराज और इन्द्रदेव को विदा कर दिया। सेठ भगवान से हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा।

"प्रभो ! मुझे सत्संग के पुण्य का फल देखना है।"

भगवान मन्द-मन्द मुस्कराने लगे। बोलेः

"उस भक्त बालक के साथ तूने दो घड़ी सत्संग किया और वह भी आधा सुना आधा नहीं सुना। फिर भी चित्रगुप्त, यमराज और इन्द्र तुझे आदर के साथ मेरे पास ले आये और तू साक्षात् मेरे दर्शन कर रहा है, मुझसे बात करने का अधिकारी बन गया है। इससे बढ़कर और क्या फल हो सकता है।

उस बालक के साथ तेरे दो घड़ी के सत्संग मात्र से ही तू मुझे देख रहा है। सत्संग से ही मैं दिख रहा हूँ। मैं कण कण में, सर्व हृदयों में वास करने वाला वासुदेव बिना सत्संग के नहीं दिखता। सत्संग का फल तू देख ही रहा है।"

मजदूर बालक के साथ दो घड़ी सत्संग करने मात्र से जब श्रीहरि के दर्शन हो सकते हैं तो संत के दरबार में आकर सत्संग सुनते हो तो दिल में दिलबर रस स्वरूप से प्रकट हो जाय इसमें क्या आश्चर्य है।

भगवान कहते हैं-

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।।

"अन्तःकरण की प्रसन्नता होने पर इसके सम्पूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्न चित्तवाले योगी की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हटकर एक परमात्मा में ही भली भाँति स्थिर हो जाती है।"

वह आत्मज्ञान का प्रसाद, दिल का प्रसाद जब मिलता है तब सारे दुःख दूर हो जाते हैं। बुद्धि प्रतीति से ऊपर उठकर प्राप्ति में पहुँच जाती है, परब्रह्म परमात्मा में ठहरने लगती है।

जिसको सत्संग में रूचि नहीं है उसको कुसंग में रूचि है। जो सत्संग नहीं करेगा वह कुकर्म जरूर करेगा। जो सदविचार नहीं करेगा वह कुविचार जरूर करेगा। जो राम को प्यार नहीं करेगा वह काम का जरूर गुलाम होगा।

इसलिए अपने हृदय में बैठे हुए आत्मा को प्यार करो, राम को प्यार करो।

प्यार तो अपने दिलवाले से करो और व्यवहार बाहर करो। प्यार दिलवाले से करोगे तो तुम्हारा दिल पवित्र हो जायेगा। पवित्र दिल से सदभावना से ओतप्रोत होकर तुम व्यवहार करोगे तो तुम्हारा व्यवहार भी साधना हो जायेगा, दिल में दिलबर का प्यार भरके तुम व्यवहार करोगे, व्यवहार में प्रेम रखोगे, सदभावना रखोगे तो व्यवहार भक्ति बन जायेगा। अगर भक्ति में प्रेम नहीं है, सदभावना नहीं है तो भक्ति भी झगड़ाबाजी हो जायेगी।

वास्तव में सच्चे सत्संग में, सच्चे ज्ञान में, सच्चा जीवन जीने के मार्ग में रूचि नहीं है इसलिए सांसारिक जीव दुःखी है। जब सच्चा सत्संग, सच्चा ज्ञान, सच्चा परमात्मा-प्रेम हृदय में प्रकट होने लगता है तो समाज में सुख शान्ति, आनन्द, उदारता आदि सदगुण खिलते हैं।

मैं कहता हूँ- एक चक्रवर्ती सम्राट होना उतना अच्छा नहीं जितना भगवान का प्यारा सत्संगी होना अच्छा है।

सम्राट के साथ राज्य करना भी बुरा है न जाने कब रुला दे।
संत के साथ भीख माँगकर रहना भी अच्छा है न जाने कब मिला दे।।

इसलिए.....

कर सत्संग अभी से प्यारे नहीं तो फिर पछताना है....।

सत्य स्वरूप ईश्वर में रहने का अभ्यास आज से ही चालू कर दो। यह जगत प्रतीति मात्र है। प्रतीति को जिसकी सत्ता से देखा जाता है उस परमात्मा को, तुम्हारे अन्तरात्मा को, उस सर्वेश्वर को, उस परमेश्वर को स्नेह करो। जो सदा प्राप्त है उसमें गोता मारो, उसी प्राप्तिरूप परमेश्वर में स्थिर होते जाओ।

हरिः ॐ.... ॐ..... ॐ...।

हिम्मत करो। कार्य कठिन नहीं है। तुच्छ आकर्षण छोड़कर शाश्वत की ओर चलने का दृढ़ संकल्प तुम्हें तो निहाल करेगा, तुम्हारे संग में आनेवालों का भी बेड़ा पार करेगा।

प्रतीति में आसक्त न हो और प्राप्ति में टिक जाओ तो जीते जी मुक्त हो।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

तो माया तरना सुगम है

परमात्मा की माया बड़ी दुस्तर है। जीव को जल्दी से पता चलने नहीं देती कि वह क्या चाहता है। हम जिन चीजों की इच्छा कर रहे हैं वे चीजें जिनके पास हैं वे क्या तृप्त हो गये हैं ? हम जो कुछ चाहते हैं वह जीवन का सही लक्ष्य है क्या ? हम जो कुछ बनाये जा रहे हैं, सजाये जा रहे वह साथ चलेगा क्या ?.... माया में हमारी बुद्धि उलझी हुई रह जाती है।

न मां दुष्कृतिनो मूढ़ाः प्रपद्यन्ते नराधमाः
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमिश्रिताः।।

'माया के द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है ऐसे असुर स्वभाव को धारण किये हुए मनुष्यों में नीच दूषित कर्म करने वाले मूढ लोग मुझको नहीं भजते।'

(भगवदगीताः 7.15)

अज्ञान से हमारा ज्ञान आवृत्त हो गया है। हम मोहित हो जाते हैं, ब्रह्म में से जन्तु की श्रेणी में आ जाते हैं।

जीव माया के तीन गुणों से बचने की युक्ति जान ले, परमात्मा की शरण ले ले, समझ पा ले तो पता चले कि इतने जन्मों से हमने अपने साथ धोखा किया, अपने साथ गद्दारी की। कम से कम अपने साथ तो बुरा मत करो।

हम अपने साथ बुरा करना नहीं चाहते लेकिन हम वही प्रवृत्ति करते रहते हैं जिससे हमारा अहित होता है। हम वे ही पदार्थ चाहते हैं जिससे हमारा ज्ञान दबा रहता है। हम वे ही सुविधाएँ चाहते हैं जिससे हमारा मन दुर्बल हो जाता है, मनोबल क्षीण हो जाता है। हम वे ही पद चाहते हैं जिससे हमारा अहंकार बढ़ता है, अहंकार विसर्जित नहीं होता। हम वे ही सुख चाहते हैं जिससे हमारी वासनाएँ बढ़ती हैं, वासनाएँ निवृत्त नहीं होतीं। अगर वासना निवृत्त करने वाले सुख में गोता मारें तो बेड़ा पार हो जाय।

वासना निवृत्त करने वाला सुख तो केवल आत्मसुख है, आत्म-ध्यान है। वासनाओं को निवृत्त करने वाला सुख तो एक राम का सुख है। वासनाओं को भड़काने वाला सुख काम का सुख है, विषयों का सुख है। कामना का सुख लेते लेते हम कई जन्मों से भटकते आये हैं, कई जन्मों से जीते आये हैं, मरते आये हैं। हमारा यह मनुष्य जन्म है, शायद इस बात को समझ जाएँ, इस वचन को हम समझ जाएँ कि यह माया है।

माया का अर्थ है धोखा। माया = या मा सा माया। जो नहीं है फिर भी प्रतीत होती है वह माया। माया का वास्तविक अस्तित्व नहीं है, वास्तविक सार नहीं है, माया की वास्तविक स्थिति नहीं है, माया की वास्तविक सत्ता नहीं है फिर भी प्रतीत होती है। माया से हम लड़ना चाहें तो क्या खाक लड़ेगी ? मिट्टी का पुतला जमीन से लड़ने जाय, घड़ा चट्टान से लड़ने जाय ते क्या होगा ? फूट ही जाएगा। ऐसे ही हमारा यह स्थूल शरीर, हमारा मन, हमारी बुद्धि, हमारा कारण शरीर, ये सब माया के बने हुए हैं। विशाल ब्रह्माण्डों में फैली हुई इसी माया की सत्ता से ही बने हुए इन साधनों से ही माया को जीतने की चेष्टा करें तो जीतना मुश्किल है। जैसे बुदबुदा सागर को वश करना चाहे तो सागर का वश होना असंभव है।

बुदुबदा सागर को वश न करे लेकिन बुदबुदा अपनी वजूदी जाना ले तो पता चले कि मैं पानी हूँ। सागर भी तो पानी ही पानी है। जैसे बुदबुदा पानी के शरण चला आया ऐसे ही जीव परमात्मा के शरण चला जाय तो उसके लिए माया तरना आसान हो जाता है। नहीं तो, माया में रहकर, मन में रहकर, बुद्धि में रहकर, शरीर में रहकर, अहंकार में रहकर, कोई अपनी अक्ल से, अपने बाहुबल से, अपने धन से, अपने वैभव से, अपने मित्रों के सहारे से, अपने सत्ता की कुर्सी से अगर माया को पार करना चाहता है तो वह नादान है। मानो वह सागर में गद्दियाँ बिछाकर सागर को पार करना चाहता है।

माया त्रिगुणात्मक है। उसके किसी न किसी गुण में हम अपना अहंकार जोड़ देते हैं। आती है नींद शरीर को थकान के कारण, तमस् के कारण और हम कहते हैं कि मुझे नींद आ गई। लगती है भूख प्राणों को लेकिन हमारा अहंकार कहता है कि मुझे भूख लगी। होता है हर्ष मन को लेकिन हम सोचते हैं मुझे हर्ष हुआ। होता है शोक मन को और हम कहते हैं कि मैं दुःखी हूँ।

माया के गुणों के साथ हम मिल जाते हैं क्योंकि हम परमात्मा की शरण में नहीं हैं। हम गुणों के शरण हो जाते हैं। हम परमात्मा के शरण नहीं हैं इसलिए मान-अपमान के शरण हो जाते हैं। हम परमात्मा के शरण नहीं हैं इसलिए कल्पना के शरण हो जाते हैं और खो जाते हैं गुणों के अधीन। इसी का नाम माया है।

अपनी अक्ल है नहीं और दूसरों का मानना नहीं। यही माया है।

बड़े-बड़े तीसमारखाँ जो संसार को नचाने की सत्ता रखते थे वे भी माया के आगे नाचकर गये। जो स्वर्ग की सीढ़ियाँ बनाने की योग्यता रखते थे, जिनके पास ऐसे नौकर थे जो सोने का मृग बन जाय और सीता को धोखा दे दे ऐसे रावण जैसे लोग भी माया के आगे हार गये। माया गुणमयी है। माया धन का, सत्ता का, धर्मात्मा होने का, पुण्यवाला होने का, सेवक होने का, साधक होने का, भक्त होने का, कुछ न कुछ होने का अहंकार हमारे चित्त में पैदा कर देती है।

माया तब तक हमें अपनी झपेट में लेती रहती है, तब तक हमें गिराती रहती है, तब तक हमें बाँधती रहती है जब तक हम परमात्मा के शरण नहीं गये। जब तक हमने उस परमात्मा के लिए हमारी भूख नहीं जगी तब तक माया हमें मजदूरी कराती रहती है।

'धन कमाएँगे तो सुखी होंगे, सत्ता मिलेगी तो सुखी होंगे, राज्य मिलेगा तो सुखी होंगे, शत्रु मरेगा तो सुखी होंगे, मित्र आयेगा तो सुखी होंगे....., ये सब मन की कल्पनाएँ हैं और मन माया से बना है।

रामायण में आता हैः

संसृत मूल शब्द प्रद नाना।
सकल शोक दायक अभिमाना।।

'संसृत' माने जो सरकने वाला है, नाश के तरफ जाने वाला है। उस नाशवान पदार्थों में, नाशवान अवस्थाओं में, जिसकी रूचि हो गई, जिसका मोह हो गया उसको सब शोक आकर मिलते हैं। बदलने वाले अहंकार को, बदलनेवाले प्रकृति के पदार्थों को, बदलने वाले गुणों को जिसने 'मैं' मान लिया, बदलने वाली अवस्थाओं को जिसने अपनी अवस्थाएँ मान ली, बदलने वाले शरीर को जिसने 'मैं' मान लिया, बदलने वाले घर को जिसने 'मेरा' मान लिया, बदलने वाले पत्नी के देह को जिसने अपनी पत्नी मान लिया, बदलने वाले पुरुष के देह को जिसने अपना पति मान लिया, बदलने वाले कुटुम्बियों को जिसने अपना मान लिया उसके लिए तुलसीदासजी कहते हैं-

संसृत मूल शब्द प्रद नाना।
सकल शोक दायक अभिमाना।।

सब लोकों को देने वाला अभिमान है। अभिमान होता है माया का कोई कार्य। माया का कोई गुण लेकर, माया का कोई रंग लेकर अपने में इस प्रकार का अभिमान होता है।

देह तो बनी है माया की मिट्टी से, अभिमान होता है कि 'मैं फलाना हूँ।' मन बना है माया के सूक्ष्म तत्त्वों से, हमें अभिमान होता है कि 'मैंने अच्छा काम किया.... मैंने बुरा काम किया.... मैंने पाप किया... मैंने पुण्य किया...' अरे भैया ! तू करने वाला कौन है ? उस अनन्त की हवाएँ लेकर तू अपने फेफड़े चला रहा है। उस परमात्मा की सत्ता से सूर्य की किरणें तुझे जिला रही हैं। तेरा अपना क्या है ?

'मैंने यह किया... अब मैं यह करूँगा..... मैंने यह पाया.... अब मैं यह पाऊँगा...'

सच पूछो तो देने वाले परमात्मा की ऐसी अदभुत करूणा है, कृपा है कि देने वाला हम लोगों को दिखता नहीं और जो कुछ मिलता है उसे हम अपना मान लेते हैं। शरीर उसने दिया है। सब वैज्ञानिक मिलकर राई का एक दाना बना नहीं सकते। मिट्टी का एक नया कण बना नहीं सकते। जो कुछ बनाएँगे वह अनन्त परमात्मा की बनायी हुई चीजों का ही जोड़-मेल बिठाकर बनाएँगे और फिर उसमें 'मैं-मेरा' करके मालिक बन जाएँगे। फिर कहेंगे 'यह मेरा घर है।'

घर तेरा है तो क्या घर की ईंटें तूने बनायी ?

नहीं, कुम्हार ने बनायी।

कुम्हार ने कैसे बनायी ?

मिट्टी में से।

मिट्टी कुम्हार ने बनायी ? आग कुम्हार ने बनायी ? पानी कुम्हार ने बनाया ?

नहीं।

पानी कुम्हार का नहीं, आग कुम्हार का नहीं, मिट्टी कुम्हार की नहीं तो ईंटें कुम्हार की कैसे हो गई ? ईंटें कुम्हार की नहीं हैं तो वे ईंटें तुम्हारी नहीं हैं। जब ईंटें तुम्हारी नहीं हैं तो घर तुम्हारा कैसे होगा।.....लेकिन माया में उलझकर बोलते हैं कि मेरा घर....। व्यवहार के लिए मान लो, कह लोः मेरा घर.... तेरा घर....' भीतर सोचोः किसका घर ? क्या मेरा और क्या तेरा ?

'यह बेटा मेरा है क्योंकि मैंने उसको जन्म दिया।'

तूने उसे जन्म कैसे दिया ? तूने रोटी खायी, जल पिया... यह जल तूने बनाया है ? नहीं। अन्न तूने बनाया है ? नहीं। अन्न बनने में तो सूर्य का संयोग था, पाँच भूतों का संयोग था। पंचभूतों से अन्न बना, फल बने। शरीर ने अन्न-फल-जल ग्रहण किये। उन्हीं माता-पिता के शरीरों के रज-वीर्य से तेरा शरीर बना। तेरा शरीर भी तूने नहीं बनाया तो बेटे का शरीर तूने कैसे बनाया ?

माता-पिता के रज-वीर्य से तेरा शरीर बना। प्रकृति की चीजें खाकर तेरा शरीर बड़ा हुआ। इस शरीर से कोई जीव रज वीर्य के रूप में पसार हुआ और तू बोलता है 'यह मेरा बेटा है..... उसके लिए मैं कुछ कर जाऊँ। मेरी पत्नी है ..... मेरा पति है....।'

तुझे यह माया भ्रमित कर रही है। उनके लिए तू क्या कर सकेगा ? कम-से-कम तू अपने कल्याण के लिए तो कर ! मकान तेरा नहीं.... बेटा तेरा नहीं.... पत्नी तेरी नहीं.... मन तेरी नहीं... बुद्धि तेरी नहीं.... चित्त तेरा नहीं.... अहंकार तेरा नहीं... जिसकी सत्ता से यह सब लीला हो रही है वह परमात्मा तेरा है। तू उसकी ठीक से स्मृति बना ले तो तेरी ज्ञानमयी दृष्टि जिन पर पड़ जाएगी उनका भी कल्याण होने लगेगा। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं किः

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।

'जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं वे इस माया को उल्लंघन कर जाते हैं, संसार से पार हो जाते हैं।'

भगवान को कहते हैं-

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।

'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है।'

(भगवदगीताः 9.30)

सच पूछो ते सज्जनों से, धर्मात्माओं से दुराचारी आदमी भगवान को जल्दी पा सकता है, अगर वह सचमुच भगवान के शरण हो जाय तो। सज्जन के मन में, धर्मात्मा के मन में तो भ्राँति होती है कि मैं सज्जन हूँ, मैं धर्मात्मा हूँ। उसकी ऐसी धारणा बनी रहती है, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि प्रकृति या माया की चीजों का अभिमान बना रहता हैः 'हम तो धार्मिक हैं... हम तो सत्संगी हैं।' जो दुराचारी है, पापी है, पापकृत्तम है उसको तो 'मैं सज्जन हूँ... मैं पुण्यात्मा हूँ....' ऐसा अभिमान तो होता नहीं। मैं पापी हूँ...... मैं अधम हूँ....' ऐसा समझकर वह परमात्मा के शरण आता है तो वह पूरे का पूरा शरण आता है धर्मात्मा तो थोड़ा धर्म में रहता है, थोड़ा कर्म में रहता है, थोड़ा व्यवहार में रहता है इसलिए धर्मात्मा का कल्याण थोड़ा देरी से होता है। अधूरी शरण आये हुए धर्मात्मा की अपेक्षा पूरी शरण आया हुआ दुरात्मा जल्दी पार हो जाएगा।

इसका मतलब यह भी नहीं कि धर्मात्मा लोग अपना धर्मात्मापना छोड़कर दुरात्मा बन जाय। नहीं...। धर्मात्मा अपने धर्मात्मापना छोड़कर दुरात्मा बन जाय। नहीं....। धर्मात्मा अपने धर्मात्मापने का अभिमान छोड़ दे और भगवान के पूरे शरण आ जायें। दुरात्मा अपना दुरात्मापने का अभिमान छोड़कर भगवान के पूरे शरण आ जाय।

दुरात्मा व्यक्ति दुरात्मा है इसलिए वह हार जाता है और पूरा भगवान के शरण आ जाता है। धर्मात्मा व्यक्ति मानता है कि 'मैं धर्मात्मा हूँ.... भगवान का भक्त हूँ....।' वह भगवान का भक्त कहलाने के लिए आता है तो उसका कुछ न कुछ अपना अस्तित्व रखकर आता है इसलिए वह पूरा शरण नहीं हो पाता। वालिया लुटेरा पूरा प्रपन्न हो गया तो जल्दी से उसका कल्याण हो गया।

हम जितने पूरी ईमानदारी से भगवान के शरण जाते हैं उतना उतना कल्याण होता है।

उस भगवान ने गर्भ में भी तुम्हारी रक्षा की, तुम माता के उदर में थे तब रक्षा की। जब जन्म लिया तब माता की छाती में दूध भर दिया। माता वही रोटी, वही सब्जी, वही दाल खाती है तो बच्चे के जन्म के साथ उसी सामग्री से दूध बनने लगा। बच्चा बड़ा हुआ, अन्न खाने योग्य हुआ तो दूध बनना बन्द हो गया। परमात्मा की कैसी दिव्य व्यवस्था है ! फिर भी आदमी चिन्ता की गठरी लेकर घूमता है। 'मैंने यह किया... वह किया....।' भाई ! कार्य प्रकृति में होते हैं करने की सत्ता जहाँ से आती है उसे फलार्पण करते हुए निष्काम भाव से, निरहंकारी होकर, तत्परता से कार्य किये तो नैष्कर्म्यसिद्धि को प्राप्त कर लेगा।

हम जब भगवान के शरण नहीं होते तब हजार-हजार मुसीबतें उठानी पड़ती हैं। ईश्वर की शरण चुके कि दुःख, बोझा, कर्म, काम, क्रोध, लोभ, मोह, घृणा, चिन्ता, ग्लानि, राग-द्वेष....

आदि के नर्कों में पड़े। ईश्वर की स्मृति छूटी, ईश्वर का सहारा छूटा, उस अनन्त का सहारा छूटा तो बस झपटे गये दुःखों में। जैसे बिल्ली के हाथ चूहा आया ऐसे ही हम माया के हाथ आ जाते हैं, कल्पना के जाल में फँस जाते हैं। सुख के लिए सदियों से और जन्मों से मजदूरी आज तक करते आये लेकिन सुखी हुए नहीं। सुख की कहीं परछाई दिखती है तो भागते हैं लेने के लिए। जहाँ-जहाँ गये, सुख की परछाइयाँ दिखी, सुख न मिला।

अमृत का मतलब यह है कि उसमें विष पड़े तो विष भी अमृत हो जाय। सुख का मतलब यह है कि उसमें दुःख पड़े तो दुःख भी सुख हो गया। शीतलता की पहचान क्या ? उसमें अंगारा पड़े तो अंगारा भी शीतल हो जाय।

हमको आज तक सुख मिला ही नहीं। हमको सुख की परछाइयाँ मिली हैं। क्योंकि तीन गुणवाली माया में हम जीते हैं। त्रिगुणमयी माया से विमोहित हो गया है हमारा ज्ञान। श्रीकृष्ण कहते हैं-

न मां दुष्कृतिनो मूढ़ाः प्रपद्यन्ते नराधमाः

जो नरों में अधम है, जो दुष्कृत्य करते हैं, जिनकी बुद्धि मलिन है, जो विकारी हैं, विलासी हैं, जिनको अपने मनुष्य जन्म की कीमत नहीं है वे मेरी शरण नहीं आते।

तुम किसकी शरण जाते हो ? सुख की शरण जाते हो.... वाहवाही की शरण जाते हो कि परमात्मा की शरण जाते हो ? सच्चे परमात्मा की शरण जाते हो तो तुम्हें बाह्य सहारों की आवश्यकता नहीं है। बाह्य सहारे तो तुम्हारे चरणों में आ जायेंगे। अगर तुम्हारी प्रीति परमात्मा में नहीं है तो तुम न जाने किस किस को क्या-क्या मस्का लगाओगे ! किस किस के आगे कितने कितने दाँत निकालोगे !

जो भगवान के शरण जाते हैं, भगवान उनके हो जाते हैं। जो ईश्वर के हो जाते हैं, ईश्वर उनका हो जाता है। फिर उनके द्वारा भगवान जो भी संकल्प कर दे, कहला दे वह घटना तुरन्त ही प्रकृति में घटने लगती है। द्रौपदी के वस्त्राहरण का प्रसंग आपने कथा में सुना होगा। दुःशासन वस्त्र खींच रहा है तब द्रौपदी युधिष्ठिर की ओर निहार रही है, दूसरे पाण्डवों की ओर निहार रही है, बुजुर्गों की ओर निहार रही है। तब तक उसे दुःशासन का भय है। जब वह भगवान की शरण आ गई तो वह पूर्णतया सुरक्षित हो गई। भगवान का वहाँ वस्त्रावतार हो गया। दुःशासन साड़ियाँ खींचते थक गया। लेकिन द्रौपदी को निर्वस्त्र नहीं कर पाया। वे साड़ियाँ कौन-सी मील से आयी होंगी ?

जो परमात्मा के शरण हो जाता है परमात्मा उसके अंतिम समय में तथा भारी विपत्तियों के समय में उसकी रक्षा करता है। अगर हम ईमानदारी से परमात्मा के शरण हैं तो जितने सुनिश्चिन्त होते हैं, सुखी होते हैं, सुरक्षित होते हैं उतने कुटुम्बी, सगे-सम्बन्धी, मित्र, राजा, महाराजा, सम्राट आदि सब मिलकर भी हमें सुखी, सुनिश्चिन्त और सुरक्षित नहीं कर सकते... जितने परमात्मा की शरण से सुनिश्चिन्त और सुरक्षित होते हैं।

नेता, राजा-महाराजाओं को सहारा कई लोगों ने लिया लेकिन कुछ कल्याण नहीं हुआ। भगवान की शरण लेने पर शायद प्रारब्ध वेग से कोई कष्ट आ भी जाय तो भी भक्त समझता है कि, 'कष्ट देह को हो रहा है। तेरी मरजी पूरण हो....।'

जब चित्त में 'तेरी मरजी पूरण हो....' का भाव आ जाता है तो परमात्मा तुरन्त हमें अपना बना लेता है। वास्तव में तो हम है ही परमात्मा के और परमात्मा हमारा है लेकिन हम चित्त में रहकर ममता में, वासना में रहकर, इच्छाओं में रहकर जीना चाहते हैं। माया के गुणों में रहकर वासनाओं के अनुसार अपना जीवन गँवाते हैं। इसी से हम दीन-हीन हो गये हैं, वरना परमात्मा हमसे दूर नहीं। दुःखी होने का तो कोई कारण ही नहीं है।

परमात्मा जिसके साथ है, परमात्मा की सत्ता से दिल की धड़कने चल रही हैं, परमात्मा की सत्ता से हमारी आँखें देख रही हैं, परमात्मा की सत्ता से हमारे कान सुन रहे हैं इतने हम परमात्मा के निकट हैं फिर दुःखी क्यों हैं ?

तुम मानो चाहे न मानो लेकिन जिस सत्ता से श्रोता के कान सुन रहे हैं उसी सत्ता से वक्ता की जिह्वा चल रही है। जिस सत्ता से श्रोता की आँखें वक्ता को निहार रही हैं उसी सत्ता से वक्ता की आँखें श्रोताओं की ओर निहार रही हैं। दोनों तरफ की आँखों में सत्ता एक ही परमात्मा की है। इस प्रकार की स्मृति अगर बनी रहे तो आहा... ! उसके लिए माया तरना कोई कठिन काम नहीं है। उसके लिए माया है ही नहीं। है तो अति छोटी है, अति तुच्छ है।

जो लोग माया की चीजों को, माया के शरीरों को, माया के सम्बन्धों को सच्चा मानकर सुखी होना चाहते हैं और माया से तरना चाहते हैं उनके लिए तो माया बड़ी दुस्तर है।

जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं।
अंतराम कछु आवत नाहीं।।

जिसके हृदय में परमात्मा के लिए प्रीति है उसको अगर संसार का सुख दिया भी जाय, उसकी वाहवाही की जाय, उसको यश दिया जाय, उसको सुख-सुविधाएँ मिल जाय फिर भी वह इन चीजों में फँसता नहीं और इन चीजों को पाकर अपने को भाग्यवान नहीं मानता। इस तुच्छ यश, मान, भोग, विलास का कोई महत्त्व ही नहीं होता उसके चित्त में।

हम लोग तो परिश्रम करके संसार का सुख, ऐशो-आराम, वाहवाही, शरीर की सुविधाएँ पाकर अपने को भाग्यवान मानते हैं। जिनको परमात्मा की स्मृति मिल गई है, जिनको परमात्मा घर-गृहस्थी में दिखते हो, उनको संसार की सब सुविधाएँ मिलती हों, यश होता हो तभी भी वे चित्त से उपराम रहते हैं। वे समझते हैं, और भगवान से कहते हैं किः 'हे प्रभु ! हमने क्या पाप किया है कि तेरी स्मृति हटाने वाले पदार्थ हमें दे रहा है हम पर क्यों नाराज है ?'

शंकराचार्य ने ठीक ही कहा हैः

सो संगति जल जाय जिसमें कथा नहीं राम की।
बिन खेती की बाड़ किस काम की ?

वे नूर बेनूर भले जिसमें पिया की प्यास नहीं।।

"वे आँखें हमारी फूट जाएँ जिन आँखों में ईश्वर के लिए आँसू न बहें। वह दिल हमारा धड़कने से रुक जाय जिस दिल में दिलबर को याद न हो। हमारे उस व्यवहार आग लगे जो तेरे आनन्द से हमको दूर कर दे।'

उनके उपराम चित्त में ऐसा हुआ करता है। 'हमारी सुविधाओं और वाहवाही को हे भगवान ! तू अभी-अभी छीन ले लेकिन तू अपनी प्रीति हमसे मत छीन। दुनिया की चीज तू छीन ले, तेरी बड़ी कृपा होगी लेकिन तू अपनी रहेमत मत छीनना, अपना करुणा मत छीनना, अपना अलौकिक स्वभाव हमसे मत छीनना।'

तकदीर न कैसां डोह करे।
शल केर प्रभुखां थे न परे।।

हे मुकद्दर ! तू किसी से धोखा मत करना। तू छीनना चाहता है तो हमसे रूपये छीन लेना, क्योंकि आखिर मौत छीन ही लेगी। मौत मारकर छीन लेती है, तू जीते जी छीन ले, क्या फर्क पड़ता है। तू जीते जी हम से रूपये छीन लेगा तो हमें वैराग्य आ जायगा। तू कपड़े छीन लेना चाहता है तो छीन लेना हमसे भगवान की भक्ति मत छीनना, प्रभु का प्यार मत छीनना।

हे तकदीर ! तू हमसे धोखा करना चाहती है तो कोई संसार की चीज छीनकर धोखा कर लेकिन भगवान की भक्ति मत छीनना।

जिसके पास भगवान की भक्ति रहती है उसके पास तो संसार की चीजें दासानुदास बनकर रहती हैं।

जिसको परमात्मा के स्मरण का मूल्य पता है, जिसने परमात्मा के मार्ग में कदम रखा है उनके लिए संसार की सुविधाएँ, संसार का सुख त्यागना कोई बड़ी बात नहीं है। जो अभागे परमात्मा को त्यागकर बैठे हैं उनको तो संसार का सुख भी नहीं मिलता, थप्पड़ें ही मिलती हैं।

सौ सौ जूते खाएंगे।
तमाशा घूसे के देखेंगे।।

सौ-सौ अपमान होंगे, सौ-सौ ताने सुनने पड़ेंगे, सौ-सौ फटकार बरसेंगे लेकिन काम वही करेंगे जो काम हमें जन्म-मरण के चक्कर में घसीटता रहे। इच्छाएँ वही करेंगे, संकल्प वही करेंगे जिसके कारण हम नराधम हो जायँ।

जो दुष्कृत करने वाले हैं वे नरों में अधम हैं। पशु लोग तो अपने कर्मों का फल भोग कर ऊँची गति को पाते हैं, फिर मनुष्य बनते हैं और ये मनुष्य अभागे, विकारी जीवन जीकर, पापकर्म करके, भगवान से विमुख होकर, मायाजाल में पड़कर पशु योनि में जाने की तैयारी करते हैं। वे तो पशुओं से भी बदतर हैं। पशु तो दुःख भोगकर, कर्म भोगकर अपने पाप काटते हैं और मनुष्य योनि में आने की यात्रा कर रहे हैं। जबकि मनुष्य भगवान को भूलकर संसार के

सुख लेने के पीछे, विकार तृप्त करने के लिए, देह का अहं पुष्ट करने के लिए प्रयत्न करते हैं। वे पापाचारी नराधम कहे जाते हैं।

जो 'दुष्कृतिनः' हैं उनको भगवान मे रूचि नहीं होती। जो पापी हैं उनको भगवान में प्रीति नहीं होती। अगर उनको भगवान में प्रीति हो जाए तो पापी पापी नहीं रहता। भगवान की शरण आ जाय तो अभागा अभागा नहीं रहता।

सिनेमाघर में जाने के लिए टिकट चाहिए, पैसे चाहिए। परदेश जाने के लिए पासपोर्ट चाहिए, विद्या चाहिए, पैसे चाहिए। स्वर्ग में जाने के लिए पुण्य चाहिए। शादी करने के लिए भी दुल्हन चाहिए। नौकरी के लिए भी प्रमाणपत्र चाहिए। नौकरी में बढ़ती के लिए भी योग्यता चाहिए, जान-पहचान चाहिए। ये सब होने पर भी इनसे जो चीजें मिलती हैं उनसे व्यक्ति को शाश्वत सुख, शाश्वत शांति नहीं मिलती। परमात्मा के पास जाने के लिए तुम्हारे पास चाहे कुछ भी न हो, केवल परमात्मा के लिए भाव हो जाय तो परमात्मा तुम्हें सत्संग में पहुँचा ही देता है। वह यों नहीं पूछता कि तुम पुण्य मापने का पासपोर्ट लेकर आये हो कि नहीं..... तुम चपरासी हो या अलमदार हो..... धनवान हो कि गरीब हो... तुम अनपढ़ हो कि विद्वान हो... तुम बड़े घर के हो कि छोटे घर के हो....?

सत्संग में यह कुछ नहीं देखा जाता। सत्संग परमात्म-प्राप्ति सुलभ करा देता है।

ॐ....ॐ....ॐ.....ॐ......ॐ.....ॐ.......ॐ.....।

साधक को सार असार का, सत्य असत्य का, शाश्वत नश्वर का विवेक होना चाहिए। शाश्वत क्या है नश्वर क्या है ? सार क्या है असार क्या है ? सदा क्या रहेगा और छूट क्या जाएगा ? इस प्रकार का जब तक विवेक नहीं होगा तब तक श्रीकृष्ण जैसे, ब्रह्माजी जैसे गुरु भी मिल जाएँ, ज्ञानेश्वर जैसे, तुकारामजी जैसे संत भी मिल जाएँ तब भी लोग जीवन को धन्य नहीं कर पाते। क्योंकि वे अपना विवेक नहीं जगाते।

प्रथम भगति संतन कर संगा।
दूसर रति मम कथा प्रसंगा।।

संतों का संग करे और भगवान की कथा सुने, आत्मज्ञान का सत्संग सुने। सत्संग से विवेक जगता है।

बिनु सत्संग विवेक न होई।
रामकृपा बिनु सुलभ न सोई।।

भगवान की कृपा होती है तब सत्संग मिलता है।

दो प्रकार के लोग होते हैं- एक होते हैं क्रिया प्रधान और दूसरे होते हैं भाव प्रधान लोग। क्रिया प्रधान लोगों के लिए तो बाह्य क्रियायुक्त सेवा, पूजा, आराधना है। भावनावालों के पास बाहर की सामग्री न होते हुए भी वे भावना मात्र से बहुत ऊँचाई तक पहुँच जाते हैं। भावना से

प्रीति बढ़ती है और प्रीति से अनन्यता आती है। अनन्यता से आदमी अनन्य तत्त्व में स्थिर हो जाता है।

भगवान के लिए अगर भाव नहीं है तो संसार के लिए भाव बहेगा। प्रभु के लिए प्रीति नहीं है तो संसार के साधनों के लिए प्रीति होगी। प्रीति तो तुम्हारी परमात्मा के लिए हो और उपयोग संसार का हो।

संसार के पदार्थों का केवल उपयोग किया जाय। उनमें प्रेम करने जैसी कोई चीज नहीं है। शरीर का भी उपयोग न करो, मन का भी उपयोग करो, परिस्थितियों का भी उपयोग करो।

परिवार को भी भगवान के रास्ते लगाने में उनकी बुद्धि का उपयोग करके उन्हें अच्छी-अच्छी बाते सुनाओ, अच्छी-अच्छी कहानियाँ सुनाओ, महापुरुषों के ऐसे-ऐसे चरित्र सुनाओ, त्यागी और तपस्वी लोगों के जीवन की घटनाएँ सुनाओ ताकि तुम्हारे कुटुम्बीजन भी स्वावलम्बी बन जाएँ, पराश्रित न रहें।

दूसरों की सेवा लेते-लेते आदमी इतना आलसी और प्रमायी हो जाता है कि उसका जप-जप तथा स्वावलम्बन छूट जाता है, वह पराश्रित हो जाता है। उसकी कामनाएँ बढ़ने लगती हैं। अपने अनुकूल कोई नहीं चलता है तो पराश्रित आदमी को क्रोध आने लगता है।

जो भगवान के शरण रहता है, भगवान उसे प्रेरणा देते रहते हैं। उसे सत्संग में भेजते रहते हैं। ज्ञान और वैराग्य पुष्ट करते रहते हैं। ऐसा भगवान का प्यारा भक्त आसानी से संसार तर जाता है। भगवान के वचनों को जो नहीं मानता, नहीं सुनता वह मन के, बुद्धि के, अपने अहंकार के शरण रहकर मजदूरी करते-करते जन्म गँवाता है। मृत्यु पाता है फिर जन्म लेता है फिर मरता है फिर निम्न योनियों में गिरता है, वृक्ष होता है, धूप सहता है, कुल्हाड़े के घाव सहता है क्योंकि मनुष्य जन्म विलासिता में गँवा दिया। ऐसे बढ़िया जन्म का सदुपयोग नहीं किया।

समय का सदुपयोग करो।

हमें धन कमाना है तो उसमें हम समय लगाते हैं। कपड़े बनवाने हैं तो समय लगाते हैं, गहने बनवाने है तो समय लगाते हैं, मकान भी समय देकर बनाते हैं, स्कूटर, मोटर, गाड़ी, संसार की कोई चीज भी एकत्रित करने में समय देते हैं तभी होती है। जीवन के चालीस साल, पचास साल, साठ साल इस संसार की साम्रियाँ जुटाने में लगा देते हैं। आज तक हमने धन कमाया, मकान बनवाया, गाड़ियाँ लाये, कपड़े-गहने, रेडियो-टी.वी., कूलर-फ्रिज आदि सब लाये। ये सब चीजें देकर उसके पीछे बिताए हुए पचास वर्ष के बदले में पचास घण्टे अपनी आयु में बढ़ा नहीं सकते। पचास वर्ष देकर तुमने जो चीजें एकत्रित की, पचास वर्ष देकर जो व्यवहार-ज्ञान एकत्रित किया, पचास साल देकर तुमने जो सम्बन्ध बाँधे वे सब के सब एक साथ दाँव पर लगाने पर भी तुम्हें पचास घण्टे वापस मिल नहीं सकते। पचास घण्टे तो क्या पचास मिनट भी अपने आयुष्य में जोड़ नहीं सकते।

कोई व्यापारी हो और पचास लाख रुपये का धन्धा करे और एक पैसा भी वापस न ले तो उसने धन्धा क्या किया ? घाटा किया। सारी पूँजी खत्म हो गई।

इसी प्रकार हम लोगों ने भी अगर परमात्मा की स्मृति भूलकर संसार की स्मृति की तो हमने वही सौदा किया। जीवन के चालीस, पचास साल, खर्च करके जो कुछ इकट्ठा किया वह सब दाँव पर लगाने के बावजूद भी अगर अपने आत्मा-परमात्मा का पता नहीं लगा सकते तो सौदा खतरे का कर लिया।

अतः समय का खूब सदुपयोग करो। समय बड़ा कीमती है।

दूसरी बात यह है कि अपनी आवश्यकताएँ कम करओ। स्वावलम्बी रहो। सुख के लिए स्वाधीन बन जाओ। सुखी होने के लिए पदार्थों की गुलामी मत करो। सुख स्वरूप अपने आत्मदेव का अनुसन्धान करो।

विकार पहले मन में उठता है। फिर इन्द्रियों में आकर तुम्हें गिराता है। धन में विकार उठे और बुद्धि उसे सहयोग न दे तो तुम निर्विकारीता में आ जाओगे। विकार उठने के प्रसंग में बुद्धि अगर भगवान की शरण ले ले कि, 'हे भगवान ! हे दयालु प्रभु ! तू मुझे बचा। मेरे मन में अभी विकार उठ रहे हैं, मुझे कुसंकल्प हो रहे हैं, मनुष्य जन्म मिला है, सत्संग मिला है.... अभी मुझमें लोभ आ रहा है, मुझमें काम आ रहा है, मुझमें क्रोध आ रहा है, मुझमें मोह जग रहा है। हे मेरे नाथ ! मैं तेरी शरण हूँ......' तो तुरन्त वह अन्तर्यामी तुम्हें प्रेरणा करेगा कि अब ऐसा करो, विकारों से बचने का यह तरीका है।

माया तो घेरेगी ही, उसका झमेला तो इर्दगिर्द आयेगा ही, मन का तो सदियों से विकारी होने का स्वभाव है। अगर भीतर ही भीतर भगवान की शरण ली जाय, भगवान को प्रार्थना की जाय तो विकारों से उबारना बड़ा आसान है। उसमें दस वर्ष भी नहीं चाहिए, दस महीने भी नहीं चाहिए अगर यह तरीका आ जाय।

दुनियाँ के हंगामों में आँख हमारी लग जाये
हे मेरे मालिक; तू मेरे ख्वाबों में आना.....
प्यार भरा पैगाम लिये....।।

आत्मदेव को, साक्षी को अपना स्वरूप समझें तो यही मुक्ति... जीते जी मुक्ति।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

वेदान्त में ईश्वर की विभावना

जो मानता है कि ईश्वर अमुक आकृति में है, अमुक मूर्ति में है, अमुक देश में है, अमुक काल में है उसके चित्त में भय बना रहेगा, ईश्वर से दूरी बनी रहेगी, द्वैत बना रहेगा, विनाश बना

रहेगा। ईश्वर एक देश में है, दूसरे देश में नहीं है तो उस ईश्वर का देश के सन्दर्भ में अन्त हुआ। ईश्वर एक काल में है, दूसरे काल में नहीं है, अभी नहीं है, फिर आयेगा तो ईश्वर का काल के सन्दर्भ में अन्त हुआ। ईश्वर इतना बड़ा है, इतना लम्बा-चौड़ा है तो बाकी के हिस्से में नहीं है। यहाँ ईश्वर वस्तु के सन्दर्भ में अन्तवाला होता है। जो ईश्वर देश की दृष्टि से अनन्त नहीं है, तो उस ईश्वर का अन्त सुनिश्चित है। ऐसा अन्तवान ईश्वर से अनन्त मुक्ति कैसे उपलब्ध हो सकती है ? अन्तवाले ईश्वर से अनन्त ज्ञान कैसे मिल सकता है ?

श्री वशिष्ठजी महाराज कहते हैं कि ऐसे अन्तवाले ईश्वर की कल्पना करके उसके आगे गिड़गिड़ानेवाले मूर्ख हैं। वे अल्प मति के लोग कल्पना के जगत में खोये हुए हैं।

देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित जो अखण्ड है, एकरस है, अभी है, यहाँ है, सदा है, सर्वत्र है वही हमारा आत्मा होकर बैठा है। वह सत् है। शरीर हमारा सत् नहीं है। वह चित् है। शरीर में दिखनेवाली चेतना उसी आत्मदेव की है। शरीर में जो थोड़ा बहुत आनन्द आता है खाने-पीने, देखने-सुनने आदि का, वह हाड़-मांस के शरीर का आनन्द नहीं है, उस अनन्त के आनन्द की एक झलक मात्र है। उसके एक पाद से सारा विश्व आनन्दित हो रहा है। त्रिपाद ब्रह्म से विश्व, तैजस और प्राज्ञ, स्थूल, सूक्ष्म और कारण ये तीनों क्रिया-कलाप कर रहे हैं और सुख की झलक पा रहे हैं। ब्रह्म का चतुर्थ पाद है तुरीय। इस गुणातीत तत्त्व को जो जान लेता है वह त्रिपाद में भी अपने उसी गुणातीत तत्त्व को जो जान लेता है वह त्रिपाद में भी अपने उसी गुणातीत स्वरूप का दर्शन करता है, अनुभव करता है। अनुभव करने वाला आप अलग नहीं बचता। वह स्वयं अनुभव स्वरूप हो जाता है। वह स्वयं अपने को ब्रह्म स्वरूप में पा लेता है जान लेता है।

किसी भी देश में चले जाओ, वहाँ आकाश मौजूद मिलेगा। किसी भी काल में देखो, आकाश मौजूद मिलेगा। किसी भी वस्तु में देखो, आकाश मौजूद मिलेगा। ऐसे ही वह परमात्मा आकाश से भी अत्यंत सूक्ष्म है। किसी भी ब्रह्माण्ड में चले जाओ, उसका अस्तित्व है ही।

आकाश के बिना कोई वस्तु टिक नहीं सकती। आकाश के बिना कोई वस्तु अपना अस्तित्व रख नहीं सकती। आकाश का त्याग करके कोई वस्तु रह नहीं सकती। ऐसे ही चिदाकाश परमात्मा का त्याग करके इस भूताकाश के बाप की ताकत नहीं कि ठहर सके।

चिदाकाश चिदघन परमात्मा इतना सूक्ष्म है कि मच्छर में भी चेतना और ज्ञान का अंश उसी का है। बेक्टेरिया में भी चेतना उसी की है। घन सुषुप्ति में पड़े हुए पत्थर और पहाड़ में भी सत्ता उसी चिदघन परमात्मा की है।

ऐसे सर्वव्यापक ईश्वर को, चिदघन परमात्मा को छोड़कर जो कल्पना करते हैं कि ईश्वर किसी सातवें आसमान में बैठा है, हम मरेंगे बाद में मिलेगा, वे धोखे में रह जाते हैं। समझो ऐसा ईश्वर मिल भी गया तो भी भय बना रहेगा कि वह रूठ न जाय। अभी द्वैत रहा है न ? ईश्वर हम से अलग है, हम ईश्वर से अलग हैं।

द्वितीयाद् वै भयं भवति।

'दूसरे से भय होता है।'

ऐसा कोई लोक नहीं जिसका विनाश न हो। ऐसा कोई शरीर नहीं जो मरता न हो। ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसका रूपान्तर न हो। यह अकाट्य सिद्धान्त है। ऐसा कोई काल नहीं जो बदलता न हो। देश, काल और वस्तु की सीमा में जो भी आता है वह सब बदलने वाला होता है। महाप्रलय हो जाता है तो कुछ नहीं रहता है। कुछ नहीं रहता तो उसको देखने वाला तो जरूर रहता है। 'कुछ नहीं रहा' इसको जाननेवाला जो साक्षी है, द्रष्टा है वही सर्वस्व है। यह सृष्टि दिखती है तो इसको पैदा करनेवाला जरूर है। जो दिखता है उसका जरूर नाश होगा। तो नाश का साक्षी भी है। मोटी बुद्धि के लोगों के लिए ब्रह्मा सृष्टि की उत्पत्ति करते हैं, विष्णुजी पालन करते हैं और शिवजी संहारक हैं। वास्तव में ब्रह्माजी कहीं बैठकर स्वतंत्र ढंग से किसी वस्तुओं से सृष्टि बनाते हैं ऐसी बात नहीं है। विष्णु भगवान एक-एक जीव के मुँह में जाकर कण डालते हैं ऐसी बात नहीं है। शिवजी तीसरा नेत्र खोलकर आग जलाकर सृष्टि को जला डालते हैं ऐसी बात नहीं है।

आकाशगंगा में घूमते-घामते बारह सूर्य जब तपते हैं तब आग प्रकट हो जाती है। सृष्टि का विनाश और सर्जन होता रहता है। ब्रह्माजी, विष्णुजी और शिवजी एक-एक गुण के अधिष्ठाता देव हैं। ब्रह्माजी उत्पत्ति के अधिष्ठाता देव हैं। विष्णुजी पालन के अधिष्ठाता देव हैं। शिवजी संहार के अधिष्ठाता देव हैं। सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण इन तीनों को नियंत्रित रखने वाले ये देव हैं। वे जब चाहें तब इन गुणों का उपयोग कर लेते हैं। वास्तव में इन देवों का देवत्व उसी सच्चिदानंदघन परमात्मा का ही है। अभी घड़ा बनाने की शक्ति लेकर तुम्हारा मन ब्रह्मा बन गया। तुम अपने शरीर का, अपने बेटे बेटी का पालन करते हो तो उसी देव की सत्ता लेकर तुम्हारा मन विष्णु बन गया। तुम कभी मकान या कोई चीज-वस्तु मिटा देते हो तो वही देव तुम्हें मिटाने की सत्ता दे रहा है। इस प्रकार तुम ब्रह्मा, विष्णु, महेश के कुछ अंश में दर्शन रोज कर रहे हो।

उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय।

सुबह हुई। तुमने आँख खोलकर बाहर निहारा। जगत की उत्पत्ति हुई। काम-काज, जगत-व्यवहार की प्रवृत्ति की। यह जगत का पालन-पोषण हुआ। रात को निद्रा में गये, सब जगत समेट लिया, छू कर दिया। यह प्रलय हुआ। इस प्रकार तुम भी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करते हो। वे समष्टि के ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं और तुम अपने व्यष्टि शरीर के ब्रह्मा, विष्णु, महेश हो।

समष्टि चेतन और व्यष्टि चेतन में उपाधि भेद है, अधिष्ठान से भेद नहीं है। जैसे घड़े का आकाश और मठ का आकाश। घड़ा छोटा है और मठ बड़ा है। घड़े का आकाश घड़े की उपाधि के कारण छोटा लगता है और मठ का आकाश मठ की उपाधि से बड़ा लगता है। घड़े को और मठ को हटा दो तो आकाश एक ही है।

ऐसे ही ईश्वर भाव और जीवभाव की उपाधि हटा दो तो ब्रह्म एक ही है, चैतन्य परमात्मा एक ही है। घड़े में आया हुआ आकाश घटाकाश है ऐसे ही प्रकृति के पंचभौतिक देह में आया हुआ चैतन्य अपने को जीव मानता है। माया में आया हुआ चैतन्य अपने को ईश्वर जानता है। वह अपने को ईश्वर जानता है और यह कमबख्त अपने को जीव मानता है। वह प्रकृति के आधीन है और ईश्वर प्रकृति को वश में रखता है।

भारत का एक नागरिक प्रधानमंत्री है। वह तमाम अधिकारियों को अपने वश में रखता है। दूसरा उसी नाम का नागरिक है वह चपरासी है और किसी छोटे-से ऑफिसर के भी आधीन रहता है।

आधीन रहना और आधीन रखना यह उनकी अपनी मानसिक, बौद्धिक क्षमता पर निर्भर है। वास्तव में आधीन रखने वाले में जो चेतन है वही चेतन आधीन रहने वाले की गहराई में भी है।

ईश्वर माया को, लोकपालों को अपने आधीन रखते हैं। जीव प्रकृति के आधीन रहता है। जीव तब तक आधीन रहता है जब तक जीव में अपने स्वरूप को जाना नहीं। जीव ने अपने स्वरूप को जाना तो परमात्मदेव उसको बड़े स्नेह से स्वीकार कर लेते हैं। फिर अपने स्वरूप का साक्षात्कार करने वाला वह जीव, वह सिद्ध बना हुआ साधक अपने को ब्रह्मा, विष्णु, महेश से अलग नहीं मानता। अपने स्वरूप का बोध पाने वाला ब्रह्मवेत्ता अपने को ब्रह्मा भी समझता है। वह महसूस करता है कि ब्रह्मा होकर उत्पत्ति करने वाला मैं ही चिदघन चैतन्य हूँ। विष्णु होकर पालन करने वाला मैं ही चिदघन चैतन्य हूँ। शिव होकर प्रलय करने वाला मैं ही चिदघन चैतन्य हूँ। उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के बाद भी मेरा कभी विनाश नहीं होता। उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय प्रकृति की चीजों का होता है। और वह भी उनकी आकृतियों का होता है।

जैसे, सागर में तरंग की उत्पत्ति हुई, एक तरंग दूसरी तरंग से टकराई, लड़ मरी और जल में विलीन हो गई। तरंग का प्रलय हो गया। फिर भी जल के रूप में उसका अस्तित्व रहा। तरंग का वाष्पीकरन हो गया, जल वाष्प बन कर उड़ गया। वहाँ तरंग के रूप में अस्तित्व नहीं रहा फिर भी वाष्प के रूप में तो है ही। जल का अस्तित्व मिटा नहीं। फिर वह गंगा बनकर, यमुना बनकर वहीं सागर में पहुँचा।

ऐसे ही ब्रह्मांड में उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होता रहता है। यहाँ पानी है। समय पाकर वह बादल है। फिर समय पाकर गंगा-जमना है। समय पाकर फिर सागर में। जल तत्त्व में कुछ भी कमी नहीं होती। केवल दर्शन में परिवर्तन होता है। ऐसे ही ब्रह्म तत्त्व में, परमात्म-तत्त्व में कोई परिवर्तन नहीं होता। केवल दर्शन में परिवर्तन होता है।

'ओह ! मनुष्य बहुत बढ़ गये...।'

चेतन सर्वत्र है। जहाँ-जहाँ अन्तःकरण को शरीर मिल गया वहाँ आकृति दृष्टिगोचर हो गई। जहाँ शरीर नहीं मिला वहाँ आकृति नहीं दिखती। जैसे फल में रस भरा है, दुध में सफेदी व्याप्त है

ऐसे ही सारे ब्रह्माण्ड में चिदघन चैतन्य व्याप्त है। 'वह चैतन्य मैं हूँ....' ऐसा बोध जिसको हो गया उसको भय किस बात का ? डर किस बात का ? अनुपलब्धि किस बात की ? जो धन मिल गया सो मिल गया चला गया सो चला गया। मान आया सो आया, गया सो गया।

भगवान शंकर वशिष्ठजी महाराज से कहते हैं- हे मुनीश्वर ! इस प्रकार की जिसकी मति है वह सदा उस आत्म-परमात्मदेव का पूजन करता है। सुख-दुःख में सम रहना, लाभ-हानि में सम रहना यह उस देव की अर्चना है। तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण इन तीनों गुणों से जो क्रिया-कलाप होता है वह उस परमात्म-शिव की सत्ता से होता है। ऐसा समझकर शान्तात्मा होना यह उस कल्याण-स्वरूप शिव को बिल्वपत्र चढ़ाना है। यह जो कुछ दृश्यमान जगत है वह पंचभौतिक है। वह प्रकृति की सत्ता से संचालित होता है। प्रकृति और जगत में ओतप्रोत चिदाकाश स्वरूप देव व्याप्त है ऐसा समझना उस कल्याण-स्वरूप शिव को पंचामृत से स्नान कराना है। जहाँ कहीं उस देव को निहारना, आत्मप्रकाश से देखना यह उस देव के आगे दीया करना है। ऐसे सर्वव्यापक देव की मीठी स्मृति, मीठी समझ की सुवास फैलाना यह उस देव को धूप-दीप करना है। बुद्धिमानों के लिए यह अन्तरंग देव की उपासना है। जो बालक मति के हैं उनके लिए लोटे में जल ले जाना, वृक्ष से बिल्वपत्र ले जाना, चंदन-धूप-दीप से शिवालय में पूजा करने का विधान ऋषिश्वरों ने बनाया है। जो दस कोस नहीं चल सकते उनके लिए दो फर्लांग भी चलना अच्छा है। ऐसा करते-करते वे ऊँचाई पर आयेंगे तब इस अन्तरंग देव की उपासना करके उस देव से एक हो जाएँगे।

सच्चिदानंद परमात्मा ही अंबाजी बनकर बैठे हैं। सूर्य भी वे ही बन कर बैठे हैं। चन्द्रमा भी वे ही बनकर बैठे हैं।

कई लोग बेचारे अल्प मति के कारण ऐसी आपत्ति करते हैं कि भगवान मुक्ति दें, जो भगवान मोक्ष दें, जो भगवान अपने धाम में बुलायें उस भगवान को सर्वव्यापक बोलना, वे कुत्ते में भी हैं, घोड़े में भी हैं ऐसा कहना भगवान का अनादर है। अल्प मति के लोग ऐसा अपना पंथ फैलाते हैं।

अरे ! जो भगवान मुक्ति दें, जो भगवान आनन्द दें, जो भगवान सदा सत्ता-स्फूर्ति दें उन भगवान को एक जगह बैठाना और बाकी की जगह में वे नहीं हैं ऐसा कहना, मनुष्यों में हैं, इतर प्राणियों में नहीं हैं ऐसा कहना कितनी मूर्खता है। भगवान का यह कितना अनादर है ! भगवान जो सर्वत्र है, सर्वसत्ताधीश हैं उनको छोटा मानना, एक देश में मानना, कहना कि वे सत लोक में हैं, वैकुण्ठ में हैं, साकेत में हैं, सातवें अरस में हैं ऐसा कहकर उनको अपने जहान से निकाल देना कितनी नादानी है !

अरे ! भगवान को हर दिल मे हैं, हर कर्म में उनकी सत्ता-स्फूर्ति हैं, वे तो ज्ञानस्वरूप है। ऐसा कोई जीव नहीं जिसको अपना आहार लेने का ज्ञान नहीं हो.... अपने वंश-परिवार की परंपरा

चलाने का ज्ञान न हो। सबमें वह ज्ञान स्वरूप, सत्ता-स्फूर्ति देने वाला उदारात्मा देव है। यह तो उस देव की वास्तव में महिमा है।

विवेकानन्द ने ठीक ही कहा हैः 'जो लोग द्वैतबुद्धि से आक्रान्त हैं, जिनको अपना पंथ चलाना है, धन्धा चलाना है, अपनी तिजोरियाँ सँभालना है वे लोग देव को सर्वव्यापक नहीं समझेंगे'

देव को सर्वव्यापक स्वीकारेंगे तो फिर धन्धा कैसे चलेगा ? अपना पंथ-वाड़ा कैसे चलेगा ? मानो भगवान की प्राप्ति करना उनको ठेका ले रखा है। भगवान उनकी तिजोरी में जैसे कि बन्द हैं। जो उनके पंथ को, मत को मानेंगे उन्हीं को भगवान मिल सकते हैं, दूसरों को नहीं। मानों, उन्होंने भगवान को खरीरदकर रख लिया है। ऐसे लोग आप तो उलझे हुए रहते हैं और नश्वर चीजों के लोभ के कारण दूसरों को भी उलझाते रहते हैं। वशिष्ठजी महाराज जैसे, आप तो सुलझे हैं और अपने चरणों में बैठने वाले राजा दशरथ, भरतजी, श्रीरामजी आदि सबको सुलझा देते हैं। यही सौभाग्य की घड़ी थी कि जैसे श्रीरामचन्द्रजी ने अपने मुक्त स्वरूप में प्रयाण किया वैसे पूरी प्रजा ने भी इसी कल्याण-मार्ग पर प्रयाण किया। पूरी अयोध्या नगरी रामजी के साथ मुक्त हो गई थी। ऐसा नहीं कि किसी पंथवाला आचार्य स्वंय तर गया और दूसरे चेले उसके पीछे ताकते रहे। गुरु चेलों को कन्धे पर उठा-उठाकर मुक्त करें....! यह 'मजदूर प्रणाली' श्रीरामजी के पास नहीं थी। कोरा आश्वासन नहीं। कोरा आश्वासन तो श्रीकृष्ण भी अर्जुन को दे देते कि, 'तू युद्ध कर, मैं तुझे मुक्त कर दूँगा।' नहीं.... अपनी बुद्धि की योग्यता बढ़ाकर, अपनी क्षमता बढ़ाकर यहीं अपनी अमरता का साक्षात्कार कर लो। अर्जुन ने ऐसा किया और वह बोल उठाः

'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा....'

हाथी चिंघाड़ रहे हैं, घोड़े हिनहिना रहे हैं, 'मारो....काटो....' का माहौल है, हिंसा-अहिंसा सब एक साथ में देख लो... ऐसी रणांगण में भी गीता का ज्ञान अर्जुन ने सुना और पचाकर स्वधर्म में, कर्त्तव्य कर्म में लग गया, नैष्कर्म्यसिद्धि को पा लिया।

यह पलायनवादियों का ज्ञान नहीं है। अर्जुन मोहवश अपने कर्त्तव्य से किनारा ले रहा था। बोल रहा था कि, 'मैं भिक्षा माँगकर खाऊँगा लेकिन युद्ध नहीं करूँगा। जिनके लिए मैं युद्ध करके राज्य पाना चाहता हूँ वे मेरे परिवारजन तो सामने युद्ध के मैदान में खड़े हैं। उनको मारकर मैं क्या करूँगा ?' श्रीकृष्ण समझाते हैं-

'वे सज्जन लोग पापी का अन्न खाकर भ्रष्टमति के हुए हैं। दुर्मति से जियेंगे तो और पाप करेंगे। अतः उनको धाम में पहुँचा दो। अपने लिए राज्य मत करो। समाज की व्यवस्था के लिए राज्य करो।'

युद्ध के पीछे दुर्योधन और अर्जुन की दृष्टि अलग-अलग है। दुर्योधन अपने पक्ष में लड़ने वालों को कहता है कि तुम मेरे लिए युद्ध करो। अर्थात् तुम्हारा जो होना हो सो हो। वह अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। अर्जुन युद्ध करने से पहले श्रीकृष्ण से कहता है कि दो सेनाओं के बीच

मेरा रथ ले चलो। वह सोचता है कि युद्ध करने से क्या मिलेगा, न करने से क्या होगा। युद्ध करने न करने के बीच का रास्ता है कि सब छोड़कर मैं साधू हो जाऊँ।

श्रीकृष्ण उसे याद दिलाते हैं कि क्षत्रिय है। इस समय साधू बनना नहीं अपितु युद्ध करना तेरा धर्म है, कर्त्तव्य है। तू यहाँ जिज्ञासा के कारण या ईश्वर को पाने के कारण साधू होने के निर्णय पर नहीं आया है। अभी तो अपना क्षत्रियधर्म निभाने का अवसर है। निर्णय हो गया, युद्ध की घोषणा हो गई, दोनों सेनाएँ आमने-सामने आ गई हैं। अब कहता हूँ कि 'मैं साधू बन जाऊँ...' यह पलायनवाद है। अगर पहले से ईश्वर-प्राप्ति के लिए साधू होने की जिज्ञासा होती तो अलग बात थी। कर्त्तव्य से पलायन होने के लिए साधू बनना बिल्कुल उचित नहीं। अब अपना कर्त्तव्य कर्म करो। अपने लिए युद्ध न करो, समाज व्यवस्था के लिए, धर्म के पक्ष में युद्ध करो, यही साधू होने के बराबर है। आततायी ज्यादा बढ़ेंगे तो अशांति फैलेगी। आततायीओं को दण्ड देना क्षत्रिय का कर्त्तव्य है। आततायी वे हैं जो आग लगाते हों, देश हड़प करते हों, अबला स्त्रियों से बलात्कार करते हों, घोर अपमान करके उनको अपने जीवन-धर्म से च्युत करते हों। इस प्रकार के बड़े-बड़े छः अपराध गिनाये गये हैं।

कौरवों के पक्ष में ये बड़े-बड़े अपराध होते थे। भरीसभा में द्रौपदी को निर्वस्त्र करने की चेष्टा हुई, लाक्षागृह को आग लगाई गई। पाण्डवों का राज्यभाग हड़प लिया। दुर्योधन, शकुनि आदि में ये आततायी के सब लक्षण थे। क्षत्रिय होकर उनको दण्ड न देना अपने कर्त्तव्य से पलायन होना है।

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि तू लाभ-हानि की परवाह मत कर। सृष्टि के नियम में सहभागी हो जा। जीत जाएगा तो राज्य पा लेगा। वीरगति हो जाएगी तो स्वर्ग मिल जायेगा।

अर्जुन सृष्टि के नियम में सहभागी हो गया।

निष्काम होना एक बात है और आत्मारामी होना दूसरी बात है। श्रीकृष्ण का उपदेश सुनकर अर्जुन तो निष्कामता से भी आगे निकला। वह आत्मारामी हो गया।

भगवान श्रीकृष्ण ने यह भी दिखा दिया कि अनेकों में एक मैं ही हूँ। कहीं मुनीश्वर हूँ कहीं ऋषीश्वर हूँ। उन्होंने अर्जुन को विश्वरूप दर्शन करा दिया। वे पूरे विश्व में व्याप्त हैं इसीलिए तो विश्वरूपदर्शन कराया। भोलेभाले लोग मानते हैं कि भगवान कहीं हैं, वे आ जायें इसलिए रोते हैं, चीखते हैं। भगवान के लिये रोने-चीखने से, आराधना-उपासना करने से अंतःकरण पवित्र होगा। भगवान को पाने की तड़प से संसार का आकर्षण मिटेगा। संसार का आकर्षण मिटते ही चित्त शांत होने लगेगा। फिर भगवान तो सर्वत्र मौजूद हैं ही।

शैव माने कि कैलासपति मेरे शिव सर्वव्यापक हैं तो वह बुद्धिमान शैव है। वैष्णव है तो माने कि मेरे विष्णु जल में है, स्थल में है। यह बुद्धिमत्ता है। मेरे रामजी कण-कण में हैं... मुझमें राम तुझमें राम....।

जो सनातन धर्म को मानते हैं वे तो ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हैं लेकिन जो लोग सनातन धर्म की चद्दर ओढ़कर ईसाइयों के चमचे बने हैं, अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं वे लोग भगवान को सर्वव्यापक नहीं मानते, क्योंकि सर्वव्यापक मानेंगे तो सनातन धर्म का ओज, तेज और बल क्षीण करने का भूत उनके मूल में घुसा है वह सिद्ध नहीं होगा। इसलिए सनातन धर्म के देवी-देवताओं की फोटो रखकर भी कहते रहते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापक नहीं है, भगवद् गीता सच्ची नहीं है, वेद सच्चे नहीं हैं। ऐसा कुप्रचार वे करते रहते हैं। ऐसे लोगों से थोड़ा सावधान रहना चाहिए।

अपना आत्मबल बढ़ाने के लिए सनातन धर्म के देवों का आश्रय लेकर उन देवों की सर्वव्यापकता जानना चाहिए। वे देव आत्मरूप हमारे साथ में ही हैं। तुम निर्भीक हो, निर्द्वन्द्व हो। निश्चिन्त जीवन जीने की कला पाकर जीते जी मुक्त बनो। किसी मत का, पंथ का गुलाम बनने की तुम्हें क्या जरूरत है ? मत-पंथों की जंजीरें तोड़ो।

पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।

रमण महर्षि कहते थे अपने आपको जान लो। बुद्ध भी कहते थे 'अप्प दीपो भव।' अपना दीया आप बनो।

वशिष्ठजी महाराज कहते हैं कि जो देश, काल और वस्तु के परिच्छेदवाले किसी भगवान को मानते हैं वे अल्पमति के लोग आत्मज्ञान के उपदेश के अधिकारी ही नहीं हैं।

आत्मदेव की पूजा-अर्चना कैसे की जाती है ? वृत्ति का अपने आत्मानुभव में रहना ही उस आत्मदेव की पूजा है। वृत्ति जहाँ से उठती है उस चैतन्य में सदा 'मैं' रूप से स्थित होना ही आत्मदेव की अर्चना है। जैसे तरंग जिस पानी से उठती है उस पानी को ही अपना स्वरूप माने। तरंग अपने को पानी से अलग न माने अपितु पानी ही माने तो वह शहनशाह है। एक तरंग कह दे कि मुझमें बड़ी-बड़ी स्टीमरें चलती हैं, हजारों-हजारों मच्छ कच्छ मुझमें ही घूमते फिरते हैं, अगर वह अपने को ससीम मानकर कहे तो यह अहंकार है। तरंग अगर अपने को जल मानकर ऐसा कहे तो यह बन्दगी है। ऐसे ही ब्रह्मवेत्ता पुरुष कहते हैं कि अनंत अनंत सृष्टियाँ मुझ ही में हैं तो वे अपने को देह नहीं मानते। महापुरुष 'सोऽहम्...' कहते हैं, 'शिवो'ऽहम्...' कहते हैं अथवा स्वामी रामतीर्थ 'मैं शाहों का शाह हूँ....' कहते हैं, 'मैं देवों का देव हूँ, मुझमें अनंत सृष्टियाँ हैं.... मैं ईश्वरों का ईश्वर हूँ' आदि कहते हैं तब अपने को देह मानकर नहीं अपितु ब्रह्मस्वरूप मानकर कहते हैं। अपना सर्वोच्च अनुभव इस प्रकार साधकों की उन्नति के लिए कभी-कभी प्रकट कर देते हैं।

किन्हीं अनजान लोगों ने रामतीर्थ से पूछाः

"आप देवों के देव हैं ?"

"हाँ।"

"आप ईश्वर हैं ?"

"हाँ, मैं ईश्वर हूँ.... ब्रह्म हूँ।"

"सूरज, चाँद, तारे आपने बनाये ?"

"हाँ, जब से हमने बनाये हैं तबसे हमारी आज्ञा में चल रहे हैं।"

"आप तो अभी आये। आप की उम्र तो तीस-इक्कतीस साल की है !"

"तुम इस विषय में बालक हो। मेरी उम्र कभी हो नहीं सकती। मेरा जन्म ही नहीं तो मेरी उम्र कैसे हो सकती है ? जन्म इस शरीर का हुआ। मेरा कभी जन्म नहीं हुआ।"

न मे मृत्युशंका न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता न जन्मः।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यः
चिदानन्दरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।।

स्वामी रामतीर्थ रूपी तरंग अपने जल तत्त्व को देखती है। उनसे प्रश्न पूछने वाली तरंग अपने को तरंग रूप में देखती है इसलिए उसे गड़बड़ लगती है, स्वामी रामतीर्थ की बात में सन्देह होता है।

तरंग अपने को जल समझ ले तो वह विशाल है। जीव अपने को चिदघन चैतन्य आत्मा समझ ले तो असीम है, व्यापक है।

देह को 'मैं' मानकर अहंकार करना नरकों के दुःखों के भीष्ण अग्नि में फँसना है। आत्मा को 'मैं' मानकर अहंकार करना अर्थात् अपने को आत्मा जानना सारे दुःखों से निवृत्त होना है। यह आत्म-अहंकार इतना शुद्ध है कि वह पूरा निरहंकारी है। जो पूरा निरहंकारी है वह पूरा अहंकार कर सकता है। जो पूरा अहंकार कर सकता है वह पूरा निरहंकारी है। पूरा अहंकार करो कि 'मैं ब्रह्म हूँ। ब्रह्मा, विष्णु और महेश में जो चैतन्य आत्मा है, परमात्मा है वही मेरा आत्मा है, वही मैं हूँ।' यह पूरा अहंकार है। ऐसा अहंकारी किसको दुःख देगा ? किसको छोटा मानेगा ? वह महसूस करेगा किः

'मैं श्रीकृष्ण में हूँ.... मैं क्राइस्ट में हूँ... मैं राम में हूँ.... मैं रहीम में हूँ.... मैं हनुमान में हूँ.... मैं कुत्ते में भी हूँ....।'

लोक तर्क करते हैं कि अगर सबमें भगवान हैं तो पति पत्नी को डाँटता क्यों है ? पत्नी पति के प्रतिकूल क्यों होती है ?

पत्नी प्रतिकूल होती है या पति प्रतिकूल होता है या पशु प्रतिकूल होता है। पशु का, पति का या पत्नी का चेतन प्रतिकूल नहीं होता।

'सबमें भगवान है तो पशु को डण्डा क्यों मारते हो ? सबमें भगवान है तो बेटे को डाँटते क्यों हो ?' लोग ऐसे तुच्छ तर्क करते हैं।

इस प्रश्न को इस प्रकार समझो।

तुम्हारे अपने शरीर में तो तुम सर्वत्र हो ना ? हाँ। तो अपनी आँख पर मच्छर बैठे तो उसको एक ढंग से उड़ाते हो और पैर पर मच्छर बैठे तो थप्पड़ मार कर उड़ाते हो। ऐसा क्यों ? आँख और पैर दोनों तुम्हारे ही हैं, फिर दोनों के प्रति व्यवहार में इतना पक्षपात क्यों ? अपने गाल पर हाथ आता है तो हाथ को गन्दा हुआ नहीं मानते। सुबह टट्टी जाकर हाथ से सफाई करके हाथ को साबुन से धो लेते हो ? क्यों ? गाल और गुदा दोनों तुम्हारे ही तो हैं !

सब एक ही शरीर के अंग हैं फिर भी सबके साथ यथायोग्य भिन्न-भिन्न व्यवहार किया जाता है। ऐसे ही सर्वव्यापक ईश्वर को जानने वाले महापुरुष, ब्रह्मवेत्ता व्यवहार काल में भिन्न-भिन्न व्यवहार करते हुए दिखेंगे लेकिन परमार्थ से उनकी दृष्टि में अभिन्नता है।

जैसे माँ के चार बेटे हैं। एक ने जुलाब लिया है उसको खिचड़ी देती है। दूसरे को हल जोतने खेत में जाना है उसको रोटी और प्याज देती है। तीसरा M.B.B.S. की परीक्षा देने जाता है उसको मालपूए और दूध देती है। चौथा खाने के लिए रो रहा है उसको न खिचड़ी देती है, न मालपूए और न रोटी और प्याज देती है। उसकी तबीयत खराब है। उसको अभी भूखामरी कराना है। खाएगा तो और बीमार होगा। वह खाना माँगता है तो उसे थप्पड़ दिखाती है। कॉलेज में जाने वाला कहता है कि मुझे भूख नहीं लगी है, मुझे नहीं खाना है तो माँ उसे पुचकारती है कि, 'बेटा ! खा ले, भूख लगेगी, थक जाएगा।' उसको समझा बुझाकर दे रही है और दूसरा रो रहा है उसको नहीं देती। फिर भी माँ तो माँ ही है। सहानुभूति तो सब बच्चों से है लेकिन सबकी उन्नति के लिए सबसे अलग-अलग व्यवहार होता है।

ऐसे ही भगवान की सहानुभूति तो दैत्यों से भी है, देवों से भी है, पशुओं से भी है, पक्षियों से भी है। लेकिन उनकी उन्नति के लिए प्रकृति के व्यवहार में भिन्नता नियत की गई है।

'भगवान एक ही थे, सबमें थे, सब जगह थे तो फिर यह जगत रचकर गड़बड़ क्यों ? बन्धन में पड़ना.... मुक्ति के लिए छटपटाना.... प्रयत्न करना.... फिर मुक्त होना.... इतना दुःख... इतना सुख.... यह सब क्यों किया ?

एक सेठ था। उसने कुआँ खुदवाया ताकि लोग शीतल शीतल जल पीएँ। पानी पीने वाले पानी पीते हैं। थोड़ा बहुत ढुलता है तो कीचड़ भी होता है। कोई मूर्ख वहाँ आकर आत्महत्या कर लेता है, कुएँ में डूब मरता है।

अब लोग चिल्लाते हैं कि सेठ ने कुआँ क्यों खुदवाया ? एक आदमी मर गया, कीचड़ हो जाता है, मच्छर हो जाते हैं।

वास्तव में मच्छरों के लिए या कीचड़ या डूब मरने के लिए कुँआ नहीं था। कूँआ तो था जल पीने के लिए। जल पीने-भरने वालों ने थोड़ी अव्यवस्था की तो कीचड़ हो गया। अब सुव्यवस्था करके कीचड़ को हटाओ और कुँए का सदुपयोग करो। शीतल जल मिलेगा। कोई बेवकूफी से कुँए में डूब मरे या कीचड़ के दलदल में फँसे उसमें कूँआ खुदवाने वाले धर्मात्मा का

क्या दोष ? ऐसे ही संसार रूपी कूप बनाने वाले परमात्मा का क्या दोष ? संसार में से अनुभव लो। संसार के व्यवहार में रहते हुए परमात्मा का अमृत पीते हुए तृप्त बनो। इसलिए संसार बनाया है कि अनुभवों से गुजरते हुए आत्मलाभ कर लो। संसार की चीजों में, आसक्ति में, काम में, क्रोध में, लोभ में, मोह में, मद में, अहंकार के दलदल में कोई फँस मरे इसमें संसार रूपी कूप बनाने वाले का क्या दोष ?

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सर्वरोगों का मूलः प्रज्ञापराध

प्रज्ञापराधं मूलं सर्व रोगाणाम्...।

प्रज्ञापराध सर्व रोगों का मूल है।

जितने दुःख हैं वे बुद्धि की मन्दता से आते हैं। जितनी फँसानें हैं वे सब बुद्धि की कमजोरी से आती हैं। बुद्धि जितनी कम होती है उतना आदमी फँसता है।

अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए भी तो बुद्धि चाहिए। एक अधिकार वे होते हैं जो स्थूल देह के काम आते हैं। धन, घर, मकान, दुकान आदि चीजों की आवश्यकता है। मैं कहता हूँ कि ईश्वर की भक्ति करो, इसका मतलब यह नहीं कि धन्धा व्यवहार मत करो। नहीं, मैं तो धन्धा-रोजगार-व्यवहार के समर्थन में हूँ।

एक बात यह कही जाती है कि ईश्वर का स्मरण करते-करते काम करो। इसकी अपेक्षा काम ईश्वर का समझकर तत्परता से करो यह श्रेष्ठ है। जो आदमी कार्य करने में मजा नहीं ले सकता वह कार्य के फल का भी मजा नहीं ले सकता। Work while you work, play while you play, that is the way to be happy and gey.

जिस समय जो काम करते हो उसमें तत्पर हो जाओ। भारतीय संस्कृति ने समाज को ऐसी दिव्य दृष्टि दी है जिससे आदमी का सर्वांगी विकास हो। मनुष्य कार्य तो करे लेकिन कार्य करते-करते कार्य का फल पशु की तरह भोगकर जड़ता के तरफ न चला जाय इसका भी ऋषियों ने खूब ख्याल किया है।

जो आदमी कार्य करता है और कार्य के फल को भोग विलास में खर्च कर देता है, जिसके जीवन में निष्कामता नहीं है, परहित की भावना नहीं है, परदुःखकातरता नहीं है, जीवन में केवल विलासिता ही है वह आदमी दूसरे जन्म में वृक्ष आदि हो जाता है।

मनुष्यतन पाकर सूर्य से किरण लिये, हवाएँ ली, पृथ्वी का रस लिया, विभिन्न प्राकृतिक चीजों का उपयोग किया और तुम किसी के ठीक उपयोग में नहीं आते तो प्रकृति ऐसे विलासी जीवों को पेड़-पौधे के रूप में ढकेल देती है। वृक्ष के फल और पुष्प भी दूसरों के लिए और पत्ते-टहनियाँ भी दूसरों के लिए, तना भी दूसरों के लिए और जड़े भी दूसरों के लिए।

मानवतन पाकर आदमी सत्कर्म नहीं करता उसकी बुद्धि भोग-विलास में, मोह-कलिल में फँस जाती है। बुद्धि को ऊपर उठाने के लिए अनेक मार्ग है।

जीवन में धर्म की आवश्यकता है, धन की आवश्यकता है, मकान और मित्रों की आवश्यकता है तथा शत्रुओं की भी आवश्यकता है। जिसके जीवन में कोई शत्रु नहीं वह अभागा है। जिसके जीवन में कोई विरोध नहीं वह उन्नति से वंचित रह जाता है।

अनुकूलता में विलास जगता है और प्रतिकूलता में विवेक जगता है। अनुकूलता और प्रतिकूलता बुद्धि को विकसित करने के साधन हैं। हम लोग उनका साधन की तरह उपयोग नहीं कर पाते हैं। अनुकूलता में हम भोग रूपी दलदल में गिर जाते हैं और प्रतिकूलता में शिकायत रूपी कलह में उलझ जाते हैं। इसलिए हमारी बुद्धि का वह विकास नहीं होता जो विकास करके बुद्धि परमात्मा में टिक सके।

ज्ञान तीन प्रकार का होता हैः एक इन्द्रियगत ज्ञान, दूसरा बुद्धिगत ज्ञान और तीसरा सनातन ज्ञान। इन्द्रियगत ज्ञान अज्ञान है। अज्ञान है इसका मतलब यह नहीं कि ज्ञान का अभाव। इन्द्रियगत ज्ञान ज्ञान तो है लेकिन अधूरा ज्ञान है। आँखें देखती हैं लेकिन उसमें बुद्धिवृत्ति न मिलाओ तो सामने दिखने वाला व्यक्ति कौन है..... कैसा है इसका पता नहीं चलेगा। आँख तो दिखा देती है कढ़ाई जैसा आकाश लेकिन बुद्धि का उपयोग करेंगे तो पता चलेगा कि आकाश कढ़ाई जैसा दिखता है पर वास्तव में वैसा है नहीं। आँख की डीझाइन ऐसी है और खूब दूरी है इसलिए आकाश कढ़ाई जैसा लगता है।

ठूँठे में चोर दिखता है पर चोर है नहीं। आँख दिखा देती है सब लेकिन वह सब वास्तविक ज्ञान नहीं है।

इन्द्रियाँ कह देती हैं कि यह अच्छा है लेकिन जो सब अच्छा है वह सब ले लेने का नहीं है। उसमें तुम्हारा अधिकार है कि नहीं यह सोचना पड़ेगा। यहाँ धर्म की जरूरत पड़ेगी। किसी का मकान अच्छा है, किसी का स्कूटर अच्छा है, किसी की गाड़ी अच्छी है, किसी की पत्नी अच्छी है, किसी का पुत्र अच्छा है, किसी का कुछ अच्छा है.... तुम्हें जो अच्छा लगे वह सब लेते जाओ ऐसा नहीं है। वहाँ धर्म की जरूरत है, नियंत्रण की जरूरत है।

समाज में अगर धर्म का नियंत्रण न रहे तो केवल कायदेबाजी से समाज नहीं सुधरेगा। कायदेबाजी से अगर समाज सुधर जाता तो कायदे बनानेवाले, अमल कराने वाले और समाज, सब सुधर जाते। कायदेबाजी से समाज नहीं सुधरता। समाज में धर्म का नियंत्रण चाहिए।

एक व्यक्ति के पीछे चार सिपाही लगा दो। अगर उसके भीतर धर्म के लिए आस्था नहीं है तो वह सुधरेगा ही यह निश्चित नहीं कह सकते। वे चार सिपाही भी ठीक से निगरानी रखते हैं कि नहीं यह जाँच करने के लिए और कोई रखना पड़ेगा। कितनी भी जासूसी करने की व्यवस्था हो लेकिन जिसके जीवन में धर्म नहीं है, धर्म का ज्ञान नहीं है, धर्म की सही दिशा नहीं है, भीतर की समझ नहीं है, बुद्धिगत ज्ञान का आदर नहीं है वह हजार हजार कायदों के बीच, हजार

हजार कागजों के बीच, हजार हजार ऑडिटरों के बीच भी कहीं न कहीं धोखेबाजी कर सकता है, लोग करते रहते हैं। क्योंकि लोगों की बुद्धि में धर्म का शासन नहीं रहा। धर्म की महत्ता का ख्याल नहीं रहा। इन्द्रियगत ज्ञान का आदर अति हो गया। इन्द्रियगत ज्ञान में जो आकर्षण पैदा होता है उस आकर्षण को बुद्धि रूपी छाननी में न छानें तो आदमी पशु से भी बदतर हो जाएगा। बुद्धि जब मोह रूपी कलिल से बच जाएगी तब आदमी इन्द्रियगत ज्ञान के आकर्षण से बचेगा।

व्यर्थ के आकर्षण से आदमी इतना बदल गया है कि खुद आनन्द-स्वरूप होते हुए, सुख-स्वरूप होते हुए ईश्वर का सनातन अंश होते हुए भी वह दर-दर की ठोकरें खा रहा है। ऐसे आदमी की बुद्धि मोह रूपी दलदल में फँसी है। उसे धर्म का, सत्संग का, ईश्वर का कोई ख्याल नहीं है। ऐसे आदमी को पशु कह दें तो पशुओं का अपमान हो जाता है। पशु नाराज हो जाएँगे। पशु तो अपने कर्मों को काटकर उन्नति की ओर जा रहे हैं जबकि ऐसा आदमी अपने पुण्यों का नाश करके पतन की ओर जा रहा है। पशु तो उन्नत होता-होता इन्सानियत की ओर आ रहा है। आदमी अगर इन्द्रियगत ज्ञान के बहाव में बहता जाय तो पशुओं से भी बदतर दशा में चला जाय।

पशुओं में तो संयम है। एक खास ऋतु में संसार-भोग करते हैं। गाय को जब आवश्यकता पड़ती है तब बोलती है। वह बिन जरूरी नहीं बोलती। आदमी को देखो तो, जीवन में कोई संयम नहीं। कितना सारा बकवास करता रहता है।

आदमी के पास बुद्धि रूपी ऐसा बढ़िया साधन है कि उसे अगर सत्संग मिल जाय, उसमें अगर धर्म का संपुट आ जाय, सदाचारी व्यक्तियों का संपर्क मिल जाय तो वालिया लुटेरा भी वाल्मीकि ऋषि बन जाय। धनहीन, साधनहीन, सत्ताहीन, जातिहीन दासीपुत्र को सत्संग मिल जाता है तो वह देवर्षि नारद होकर चमक सकता है।

नारदजी की माँ एक साधारण दासी थी। किसी सेठ के वहाँ चाकरी करती थी। गाँव में चातुर्मास के लिए साधु आये। उनकी सेवा में सेठ ने इस दासी को रख दिया। छोटा-सा बालक भी माँ के साथ साधुओं के हाथ का प्रसाद मिला। धीरे-धीरे उसकी बुद्धि का विकास हुआ। ध्यान करने की रूचि हुई। ध्यान में आनन्द आने लगा। फिर प्रकाश दिखने लगा। उम्र के साथ साधना भी बढ़ने लगी। ब्रह्मचर्य में स्थिति होने लगी। सूक्ष्म जगत में अबाधित गति होने लगी। दिनों दिन बुद्धि का विकास होने लगा। समय पाकर दासीपुत्र देवर्षि नारद बनकर पूजे जाने लगे।

मनुष्य में इतर प्राणियों की अपेक्षा बुद्धिगत ज्ञान विशेष है। हाथी मनुष्य के कई गुना लम्बा चौड़ा है, कई गुना ज्यादा वजन वाला है फिर भी हाथी पर अंकुश मनुष्य का है। सिंह पर अंकुश मनुष्य का, ऊँट पर अंकुश मनुष्य का, तमाम प्राणियों पर अंकुश मनुष्य का है। यह अंकुश बाहुबल से नहीं अपितु बुद्धिबल से है।

इतर प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य में बुद्धि थोड़ी ज्यादा विकसित है। मनुष्य अगर उस बुद्धिगत ज्ञान का आदर कर ले तो वह जन्म-मृत्यु के चक्र को भी तोड़ सकता है। बुद्धिगत ज्ञान का आदर न करे तो पशुओं से भी बदतर हो सकता है।

ऐसा कोई मनुष्य नहीं जो कुछ न कुछ जानता न हो। चाहे वह अनपढ़ हो, मूर्ख हो फिर भी कुछ न कुछ जानता है, कुछ न कुछ मानता है। आप भी कुछ न कुछ जानते हो और कुछ न कुछ मानते हो।

आप जो जानते हैं उसका आदर करें.... जो मानते हैं उसका विश्वास करें। आदमी अपनी जानकारी का आदर नहीं करता है इसलिए पतित हो जाता है। अपनी मान्यता पर टिकता नहीं इसलिए गिर जाता है। आदमी जानता है कि 'अमुक चीज खाने से बीमारी होती है.. यह करने से कल्याण होता है... यह करने से पतन होता है... यह देखने से, भोगने से गिरावट होती है...' यह आदमी जानता है फिर भी उन गलतियों को दुहराता रहता है क्योंकि इन्द्रियगत ज्ञान के आकर्षण में वह बह जाता है, बुद्धिगत ज्ञान का आदर नहीं कर पता।

इन्द्रियगत ज्ञान में अगर धर्म का संपुट न हो, बुद्धि का उपयोग न हो तो कुछ न कुछ पदार्थ के सुख की लालच बनी रहेगी। बुद्धिगत ज्ञान का आदर करने से विचार का उदभव होता है कि यह भोगने के बाद परिणाम क्या ? शराब पीने के बाद परिणाम क्या ? सिगरेट पीने के बाद परिणाम क्या ? अवैध वस्तुओं का उपयोग करने के बाद परिणाम क्या ? धर्म के विरुद्ध आचरण करने से परिणाम क्या ? बुद्धि के द्वारा यह पता चलता है। बुद्धिगत ज्ञान का आदर करने से इन्द्रियगत आकर्षण टूट जाता है। इन्द्रियाँ भोग में खींचती हैं और बुद्धि परिणाम की खबर देती है।

बुद्धि का जितना आदर करते हो उतनी बुद्धि विकसित होती है। जितना तुम बुद्धि का आदर नहीं करते हो, इन्द्रियों की बाढ़ में तुम बह जाते हो उतना ही बुद्धि मन्द हो जाती है, बुद्धि का विनाश होता है। और.....

बुद्धिनाशात् प्रणश्यति। (गीता)

बुद्धि का नाश होने से आदमी का नाश हो जाता है। इन्द्रियगत ज्ञान के आकर्षण से आदमी के चित्त में भिन्न-भिन्न प्रकार की फालतू कामनाएँ पैदा होती हैं। अगर कामनाएँ पूरी हुई तो आकर्षण पैदा होता है। कामनाओं से किसी बड़े आदमी ने विघ्न डाला तो भय उत्पन्न होता है। किसी बराबरी के आदमी ने विघ्न डाला तो ईर्ष्या पैदा होती है। किसी छोटे आदमी ने विघ्न डाला तो क्रोध पैदा होता है।

कामना से ही क्रोध, ईर्ष्या और भय का जन्म होता है। कामना होती है इन्द्रियगत ज्ञान का आदर करने से। बुद्धि का अनादर करने से आदमी कामना रूपी भट्ठी में तपता है। ऐसा दुःख नर्क में भी नहीं है जैसा दुःख कामनावाले के चित्त में होता है। ऐसा सुख स्वर्ग में भी नहीं है

जैसा निष्काम पुरुष के चित्त में होता है। दूषित कामनाएँ तो दूषित हैं ही, अच्छी कामनाएँ भी इतनी महान् नहीं है जितना आदमी कामना रहित होने से महान् बनता है।

बुद्धिगत ज्ञान का आदर करने से आदमी का चित्त कामना रहित होता है। कामना रहित चित्त में एक अनोखा सामर्थ्य पैदा होता है। जो जरूरी है वह उसके द्वारा होने लगता है। जो बिन जरूरी है वह उसकी हाजरी मात्र से रूकने लगता है। सूर्यनारायण की हाजरी मात्र से फूल खिलने लगते हैं, पक्षी किल्लोल करने लगते हैं, हवाएँ शुद्ध होने लगती हैं, हानिकारक जन्तुओं का नाश होने लगता है। श्रीकृष्ण की हाजरी मात्र से ग्वाल और गोपियों को आनन्द आने लगता है। माँ का चित्त महकने लगता है। दुर्जनों का चित्त भयभीत होकर उनकी प्राणशक्ति क्षीण होने लगती है।

रावण को रामजी ने नहीं मारा। रावण ने राम जी के द्वारा अपने आपको मरवाया।

न्यायाधीश न्यायालय को छोड़कर अगर फुटपाथ पर चिल्लाने लगे तो उसका क्या आदर होगा ? अपनी कुर्सी छोड़कर पानी की मटकी भरने लगे, झाड़ू लगाने लगे तो व्यवस्था बिगड़ जायेगी। न्यायाधीश का कर्त्तव्य है कि वह अपनी न्याय की कुर्सी पर बैठ जाय। बाकी के काम सब अपने आप होने लगेंगे। उसके कोर्ट में आते ही सारा कारोबार होने लगता है। न्यायाधीश को असील और वकील को बुलाने नहीं जाना पड़ता।

ऐसे ही बुद्धि का आदर करने से जीव अपनी आत्म-कुर्सी पर बैठता है और उसका सारा कारोबार व्यवस्थित चलने लगता है। बुद्धि का आदर नहीं करने से जीव झाड़ू-बुहारी में लग जाता है, भोग भोगने में लग जाता है, बुद्धि का अनादर हो जाता है, व्यवस्था भंग हो जाती है। जीव शिव के पद पर पहुँचने का अधिकारी है लेकिन पदच्युत हो जाता है और पशु बनाया जाता है, पक्षी बनाया जाता है, पेड़-पौधा बनाया जाता है, चौरासी चौरासी लाख जन्मों में जेल भोगनी पड़ती है। न्यायाधीश तो पदच्युत हो जाय तो दस-पाँच साल की नौकरी खोता है जबकि बुद्धि का अनादर करने से जीव अपनी परमात्म-प्राप्ति का घात कर लेता है। अपना परमात्म-प्राप्ति का अधिकार नष्ट कर देता है।

दुनियाँ में जो कुछ दुःख हैं वे प्रज्ञा के दोष से हैं। जितनी बुद्धि की मन्दता उतने दुःख ज्यादा। जितनी बुद्धि हीन उतने दुःख ज्यादा। जितनी बुद्धि स्वच्छ उतने दुःख कम। बुद्धि अगर पूर्ण स्वच्छ हो गई तो बड़ा अनुपम लाभ होगा।

बुद्धिगत ज्ञान का आदर करने से व्यर्थ का आकर्षण, व्यर्थ की चेष्टा, व्यर्थ के भोग और व्यर्थ का संग्रह, व्यर्थ का शोषण और व्यर्थ का पुचकार सारा का सारा खत्म होता चला जाएगा। विकल्प कम होने से तुम्हारा मन निःसंकल्प होगा। मन निःसंकल्प होने लगेगा तो सामर्थ्य बढ़ने लगेगा। मन को ज्यादा काम नहीं तो बुद्धि को ज्यादा परेशानी नहीं। बुद्धि जहाँ से स्फुरित होती है उस वास्तविक ज्ञान में बुद्धि ठहरने की अधिकारी हो जाएगी।

तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।

इन्द्रियगत ज्ञान अति तुच्छ है। जो लोग इन्द्रियगत ज्ञान को सर्वस्व मानते हैं उन लोगों के जीवन में बस, भोग.... भोग.... भोग.....। पाश्चात्य जगत परलोक को नहीं मानता, श्राद्ध आदि को नहीं मानता। वे लोग इन्द्रियगत ज्ञान को ही सर्वस्व मानते हैं। इस शरीर को खूब खिलाओ-पिलाओ और भोग भोगो। इन्द्रियगत ज्ञान का आदर हैं इसलिए इन्द्रियों को खूब भोग चाहिए। इन्द्रियाँ चंचल हैं इसलिए भोग भी बदलते रहते हैं। पाश्चात्य जगत की क्या परिस्थिति है ? बड़ी दयनीय स्थिति है उन लोगों की। वे लोग समय-समय पर फैशन बदलते हैं, फर्नीचर बदलते हैं, घर बदलते हैं, कार बदलते हैं, कपड़े बदलते हैं.... और यहाँ तक कि पत्नी भी बदलते हैं।

कहीं-कहीं तो ऐसी जगह है जहाँ लोग अपनी पत्नी ले जाते हैं। सब लोग नाचते हैं, झूमते हैं, दारू पीते हैं और पत्नियाँ बदलकर उपभोग करते हैं। फिर भी बेचारों को सुख नहीं है.... दिनोंदिन अशान्ति के, बरबादी के रास्ते चले जा रहे हैं।

पत्नी बदलो, परिवार बदलो, घर बदलो, गाड़ी बदलो, कपड़े बदलो, यह बदलो, वह बदलो फिर भी शांति नहीं। अमेरिका में पच्चीस करोड़ की जनसंख्या है और 20-25 हजार लोग हर साल आत्महत्या करते हैं। हालाँकि वहाँ आर्थिक स्थिति बड़ी अच्छी है, खाने पीने की चीजें प्रचुर मात्रा में हैं, उनमें कोई मिलावट नहीं है, लोग खूब काम करते हैं, अपनी डयूटी बजाते हैं लेकिन मशीन की तरह काम किये जा रहे हैं। भोग में अपने को गिराये जा रहे हैं।

भारत का अभी भी सौभाग्य है कि हजारों की संख्या में तुम लोग आत्म-शांति की जगह में बैठ सकते हो।

भारत के युवक जब विदेशों में जाते हैं तब वहाँ उनका 'ब्रेन वॉश' किया जाता है। वे युवक उनसे इतने प्रभावित हो जाते हैं कि जिस भूमि में वे पैदा हुए, जो ऋषियों की भूमि है, भगवान ने भी कई अवतार इसी भूमि पर लिये हैं, कई संत-महात्मा, ब्रह्मवेत्ता सत्पुरुष इस भूमि पर अवतरित होते रहते हैं ऐसी अपनी मातृभूमि भारत के लिए उन्हें घृणा और नफरत पैदा हो जाती है।

जीसस क्राइस्ट सत्रह साल भारत में रहे थे। कश्मीर के योगियों से योग सीखा। बाद में वहाँ जाकर चमके थे। ऐसी दिव्य भारत भूमि के लिए ही वे युवक बोलने लगते हैं- India is nothing, India is very poor.

मैं अमेरिका गया था तो वहाँ के लोगों ने पूछाः "आप आध्यात्मिकता की बात करते हैं... तो भारत में आध्यात्मिकता हैं फिर भी भारत इतना गरीब क्यों है ?"

मैंने कहाः "हमारा भारत गरीब क्यों है यह तुम्हें बता दूँगा लेकिन पहले तुम यह बताओ कि तुम्हारे पास सब कुछ भौतिक सुविधाएँ होने के बावजूद भी दिल की दरिद्रता क्यों नहीं मिटती ? पति कमाता है, पत्नी कमाती है, बच्चे कमाते हैं फिर भी जैसे बूढ़े पशुओं की गोशाला में भेज देते हैं ऐसे ही तुम अपने माँ-बाप को नर्सिंग होम में क्यों भेज देते हो ? इतने दिल के दरिद्र क्यों ?"

भारत दरिद्र क्यों हुआ यह मैं बताता हूँ।

वह जमाना था कि भारत के बच्चे सोने के बर्तनों में भोजन करते थे। युधिष्ठिर महाराज ने यज्ञ किया था तब प्रतिदिन एक लाख लोगों को भोजन कराते थे, दस हजार साधू ब्राह्मणों को सुवर्ण-पात्रों में परोसा जाता था। उन्हें हाथ जोड़कर विनती करते थे कि ये सुवर्ण-पात्र को स्वीकार करके भोजनोपरान्त कृपया अपने घर ले जाइये। भोजन की पंक्तियों में कुछ लोग ये बर्तन ले जाते और कुछ लोग ऐसे भी थे जो कहतेः 'हम ये सोने के ठीकरे सँभालेंगे कि अपने आत्मधन का ख्याल करेंगे ?' सोने के बर्तन वहीं छोड़कर वे चले जाते थे। ऐसा हमारा भारत था !

हमारे भारत का एक साधू वहाँ पहुँचा तो अमेरिका के राष्ट्रपति मि. रूझवेल्ट उसका दर्शन करके बोलता हैः

"आज मेरा जीवन धन्य हुआ। अब तक ईसा मसीह के बारे में केवल सुना था। आज जिन्दा ईसा मुझे इस साधू में दिखाई दे रहा है।"

भारत में ऐसे मोती पकते हैं। भारत आध्यात्मिक और भौतिक दोनों संपत्तियों से समृद्ध था। फेरीवाले पुकार लगाते थेः 'देना चाहो तो सोने चाँदी के टूटे-फूटे बर्तन....।'

जमाना बदला। विदेशी लुटेरों ने देश पर आक्रमण किया। भारतीयों में संकीर्णता और दुर्बलता घुस गई। 'सबमें भगवान हैं' की भगवान से सब विदेशियों को आत्मसात् कर लिया लेकिन लुटेरों ने भारत का सब माल हड़प कर लिया। फिर अफगानिस्तान वाले आये, हूण आये, शक आये, ग्रीक आये, फिरंगी आये, अंग्रेज आये। सदियों तक भारत पराधीन बना रहा। शोषकों ने भारत की आर्थिक स्थिति सब गड़बड़ कर दी। शोषक लोग बढ़ गये, कंस और रावणों का प्रभाव बढ़ गया। समाज का खून चूसने वाले दुष्टों का बोलबाला होने लगा। लोगों की सावधानी नहीं रही। उन्होंने बलवान संकल्प-शक्ति खो दी। अपनी हिम्मत और प्राणशक्ति को भूलते गये। आध्यात्मिकता का, वेदांत का, उपनिषदों का अमृतोपदेश गिरिगुफाओं तक ही सीमित होने लगा। लोग हिम्मत, साहस, प्रसन्नता और सतर्कता भूलते गये। भय, लाचारी, खुशामदखोरी, पलायनवाद.... 'अपना क्या ? करेगा सो भरेगा....' इस प्रकार की धारणा से समाज पिछड़ गया। इसका फायदा शोषकों ने लिया।

..... और इस समय भारत में अमेरिका की अपेक्षा भूमि कम है, अमेरिका की अपेक्षा तीसरा हिस्सा भी नहीं है और जनसंख्या तीन गुना से अधिक है इस प्रकार देखा जाए तो अमेरिका में भारत की अपेक्षा करीब साढ़े नौ गुनी अधिक भौतिक सुविधाएँ हैं। फिर भी हमें रंज नहीं है।

तुम्हारे यहाँ इतनी सुविधाएँ होने पर भी अभी भी भारत आध्यात्मिक सपूतों के प्रसाद से प्रेम और सहनशक्ति, सहानूभूति और स्नेह, सदभाव और सामाजिक जीवन में कहीं ऊँचा है। भले सिनेमा और टी.वी. के माध्यम से पाश्चात्य जगत की गन्दगी भारत में भी आ रही है फिर भी

आध्यात्मिक सुवास, हृदय की शान्ति कोई लेना चाहे तो, मिलेगी तो भारत से ही मिलेगी, तुम्हारे यहाँ मिलना मुश्कित है।"

हे भारतवासियों ! आत्म-शान्ति, आत्म-निर्भरता, आत्म-संयम और सदाचार बढ़ाकर अपना आत्म-साक्षात्कार.... अपना जन्म सिद्ध अधिकार पा लो। कब तक विलासियों का अनुकरण करते-करते अपने को अशान्ति और उद्वेग में खपाते रहोगे ?

ऊठो... जागो.... कमर कसो। सनातन धर्म के सर्वोपरि सिद्धान्तों को अमल में लाओ और यहीं, इसी जन्म में आत्मा-परमात्मा का अनुभव, अपनी परमात्मा का अनुभव कर लो।

हे परमेश्वर के अति निकटवर्ती मानव ! बहकावे में विलासिता में फिसलने से अपने को बचा।

मानव ! तुझे नहीं याद क्या ? तू ब्रह्म का ही अंश है।
कुल गोत्र तेरा ब्रह्म है तू ब्रह्म का ही वंश है।।

हे स्थितप्रज्ञ ! हे ऋषियों की संतान ! अपनी प्रज्ञा को ऊँचा उठाओ... ब्रह्म में स्थिर करो। यही तुम्हारा वास्तविक में मुख्य कर्त्तव्य है। फिर पूरा संसार तुम्हें खिलौना लगेगा।

ॐ..... ॐ..... ॐ..... जागो.... जागो.....।

ऐसे पुरुषों को खोज लो जो तुम्हारी प्रज्ञा को परमात्मा में प्रतिष्ठित कराने की क्षमता रखते हों।

उत्तिष्ठत... जाग्रत.... प्राप्य वरान्निबोधत.....।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

विश्वास करोगे तो जागोगे.....

आत्मशक्ति क्षीण करने वाली दो मुख्य चीजें हैं- सुख की लालसा और दुःख का भय। जहाँ-जहाँ आकर्षण होता है, सुख लेने की इच्छा जगती है वहाँ अन्तःकरण कमजोर होता है। आदमी सुख के लिए बेईमानी करता है, झूठ बोलता है, कपट करता है, न जाने कितने बखेड़े खड़े करता है। मूल में है सुख का आकर्षण।

दुःख का भय भी जीव को ऐसा ही कराता है।

तो आज से गाँठ बाँध लो कि, 'सुख के आकर्षण के समय सावधान रहूँगा और दुःख के भय के समय भी सावधान रहूँगा। हो होकर क्या होगा ? हजार हजार प्रलय हो गये आज तक, फिर भी मुझ अमर आत्मा का कुछ भी नहीं बिगड़ा। तो फिर गरीबी आये तो क्या और मृत्यु आये तो भी क्या ?'

ऐसा करके अपने आत्म-स्वरूप में आ जाओ। दुःख के भय से भयभीत मत बनो।

दो प्रकार के आदमी भयभीत नहीं होते हैं-

एक तो समझदार भयभीत नहीं होते क्योंकि वे शुद्ध आचरण में चले आते हैं। दूसरे बेशर्म लोग भयभीत नहीं होते, नक्कट्टे। वे दुराचार करते रहते हैं और मानते हैं कि हम निर्भय हैं। बाहर से वे निर्भय दिखते होंगे लेकिन भीतर से उनके कर्म उनको कुरेद कुरेदकर खाते हैं। जो गुन्डा तत्व हैं वे निर्भय जैसे लगते हैं, वास्तव में वे निर्भय नहीं होते। उनकी तामसिक निर्भयता है। तामसिक और राजसिक निर्भयता नहीं अपितु सात्त्विक निर्भयता टिकती है। तामसिक और राजसिक निर्भयता तो ऊपर ऊपर से थोपी जाती है।

'मेरे पक्ष में इतने लोग हैं.... मेरी कुर्सी को हरकत नहीं होगी।' यह सत्तावालों की अपने ऊपर थोपी हुई और पराधीन निर्भयता है।

हमने ऐसे लोगों को देखा-सुना है जो कुर्सी पर थे, प्रधानमंत्री के पद पर थे और फिर जेल में जाते हुए भी सुना। जो जेल में थे वे प्रधानमंत्री हुए यह भी हमने देखा-सुना।

परिस्थितियाँ तो सदा बदलती रहती हैं। जो कैदी है वे राजा हो जाते हैं और जो राजा हैं वे कैदी हो जाते हैं। जो कंगाल हैं वे धनवान हो जाते हैं और जो धनवान हैं वे कंगाल हो जाते हैं। प्रसिद्ध व्यक्ति अप्रसिद्ध हो जाते हैं और अप्रसिद्ध लोग प्रसिद्ध हो जाते हैं। छोटे बड़े हो जाते हैं और बड़े छोटे हो जाते हैं। सुखी दुःखी हो जाते हैं। और दुःखी सुखी हो जाते है। ये परिस्थितियाँ तो आती ही रहेंगी। इन परिस्थितियों का ठीक उपयोग करने की कला आ जाय तो अपना साक्षी चैतन्य आँखमिचौली पूरी करके प्रकट हो जाता है।

'बापू....! वह प्रकट हो जाय इसलिए हममें व्याकुलता जग जाए.... कुछ आशीर्वाद दो.... तब प्रकट होगा....।'

अभी वह प्रकट है भैया। उसे देखने की कला सीख। यह कला सीखेगा तो तेरा स्नेह... तेरा भीतर का रस जागेगा। भीतर का रस जागेगा तो प्राप्त परिस्थितियों का सदुपयोग करने की कला अपने आप आयेगी। जब तू सबमें उसको देखेगा, नहीं जानता है फिर भी वह सबमें है ऐसा तू विश्वास करेगा तो तेरे द्वारा अन्याय का व्यवहार कम हो जायेगा, तेरे द्वारा पक्षपात दूर होने लगेगा। तू बिलकुल आसानी से अपने चालू व्यवहार में परम पद का अनुभव करने में सफल हो जाएगा।

प्रारंभ में वह चैतन्य परमात्मा सर्वत्र नहीं दिखेगा। इसलिए उसको किसी मूर्ति में अथवा अपने शरीर के किसी केन्द्र में ध्यान करके अथवा उपासना के द्वारा एक जगह प्रकट करके देखो। जब परमात्मा एक जगह प्रकट हो गया फिर.... फिर वह रस, वह आनन्द, वह चेतना और वह 'मैं' सर्वत्र प्रकट दिखेगा।

फिर भी तुम सर्वत्र प्राकट्य की स्थिति में नहीं पहुँच सकते हो तो एक जगह तक तो पहुँचो। जैसे गीता में विभूति योग आता है। भगवान कहते हैं 'सब ऋषियों में कपिल मैं हूँ, सब गायों में कामधेनु गाय मैं हूँ, शब्दों में प्रणव मैं हूँ, वृक्षों में पीपल मैं हूँ.....' आदि आदि।

भगवान सर्वत्र हैं फिर वृक्षों में पीपल में ही क्यों ? भगवान सबमें है तो एक कपिल मुनि में ही क्यों ?

भगवान सर्वत्र हैं यह ज्ञान पचाने की क्षमता नहीं है इसलिए भगवद प्रसाद जहाँ विशेष रूप से प्रकट हुआ है वहाँ तो कम से कम भगवान को देखो। इससे क्रमशः दृष्टि व्यापक हो जायेगी।

जैसे दूज का चन्द्रमा देखना है। जिसको ऐसे ही दिख जाता है उसके लिए कोई प्रश्न नहीं है लेकिन जिसको नहीं दिखता है उसको दिखाने के लिए सहारे देने पड़ते हैं- 'चाचा ! वहाँ देखो। वह मंदिर का शिखर है न, उसके पासवाली बरगद की डाली के ऊपर वाली टहनी के ऊपरी छोर के पास आकाश में पतली-सी लकीर जैसा है वह चन्द्रमा है।'

लक्ष्य तो चाँद दिखाना था, सूक्ष्म था। जिसको जैसे दिख जाय वैसे दिखाना है। ऐसे ही दिख जाय या शिखर के सहारे दिख जाय या वृक्ष की टहनी के सहारे दिख जाय। चश्मा सीधा करके दिख जाय या टेढ़े करके दिख जाय। कैसे भी करके देखना तो दूज का चाँद है।

ऐसे ही जीवन में देखना तो है चाँदों का भी चाँद आत्मा-परमात्मा, अपना वास्तविक स्वरूप, अपना आपा, अपना नित्य मुक्त स्वभाव। अपने आनन्द स्वभाव का, मुक्त स्वभाव का अनुभव करना है। अभी वह नहीं किया तो जिन्होंने किया है उनमें विश्वास करना पड़ता है।

उत्तम साधक को जब-जब विह्वलता, दुःख, चिन्ता, भय सताते हैं तब अपने आत्म-स्वरूप का चिन्तन करते हैं। 'दुःख मन में हुआ... मैं निर्दुःख हूँ। चिन्ता मन की कल्पना है। मैं सब कल्पनाओं से परे हूँ। ॐ....ॐ....ॐ....ॐ.....ॐ.....ॐ.....।

जाति शरीर की होती है, 'मेरी कोई जाति नहीं। मैं शांत आत्मा हूँ। विकारों से मैं परेशान हो रहा था लेकिन अब विकारो को पोसूँगा नहीं। अपने निर्विकार स्वरूप में विश्वास करके मैं जरूर जगूँगा।'

विश्वास करोगे तो जागोगे। विश्वास अगर पत्थर की मूर्ति में है तो भी कल्याण होगा ही, क्योंकि तात्त्विक रूप से तो पत्थर में भी वह तुम्हारा चैतन्यदेव छुपा है घन सुषुप्ति में। भक्त लोगों ने पत्थर की प्रतिमाओं से अपने मन चाहे इष्टदेवों को प्रकट किये हैं। मूर्ति तो वही की वही है काली की लेकिन रामकृष्ण परमहंस ने भगवती काली को वहाँ प्रकट किया था। रामकृष्ण पुजारी बने थे उसके पहले भी वह मूर्ति थी और रामकृष्ण चल दिये उसके बाद भी मूर्ति है।

विश्वासो फलदायकः।

जब पत्थर में से तुम्हारे विश्वास के बल से चैतन्य स्वरूप ईश्वर की चेतना प्रकट हो जाती है तो तुम्हारी चेतना और ईश्वर की चेतना एक ही है। तुम अपने अन्तःकरण में सावधान रहकर व्यवहार करो तो भी वह ईश्वरीय चेतना प्रकट हो सकती है अथवा किसी ब्रह्मवेत्ता सदगुरु के प्रति अहोभाव करके, वहाँ से प्रेम और प्रकाश पाने के भाव से उनके प्रति विश्वास करके चलते हो तभी भी वह परमात्म चैतन्य प्रकट हो सकता है।

1983 या 1984 में दिल्ली की 'हिन्दुस्तान' अखबार में एक घटित घटना छपी थी।

एक पैडल रिक्शावाला किसी बाबाजी को रेलवे स्टेशन से बिठाकर बस अड्डे ले जा रहा था। कई लोग खड़िया पलटनवाले बाबाजी बन जाते हैं, यात्रा करते रहते हैं, कुछ माँग लेते हैं, सीताराम.... सीताराम... कर लेते हैं। ये बाबाजी भी ऐसे ही थे। उनके पास डेढ़ सौ रुपये का रेडियो था। उस रेडियो पर फिल्म अभिनेत्री हेमामालिनी का स्टिकर लगा हुआ था।

रिक्शावाले ने बाबाजी से कहाः "महात्मा जी ! आप रिक्शा का किराया दो चाहे मत दो लेकिन ऐसा कुछ जंतर-मंतर, ऐसी कोई चीज दे जाओ कि मैं रोज पूजा करूँ और मेरे धन्धे में बरकत पड़े।"

वे तो खड़िया पलटन के बाबाजी थे। उनको किसी ने रेडियो दे दिया था। उनको भी पता नहीं था कि रेडियो पर लगा हुआ स्टीकर किसी एक्ट्रैस का है या फलानी का है। उन्होंने वह स्टीकर निकालकर रिक्शावे को दे दियाः

"ले, इसी की पूजा करना। तेरा कल्याण हो जायगा।"

रिक्शावाला झोपड़पट्टी में आया और अपनी टूटी-फूटी झोंपड़ी के एक कोने में देवी जी की स्थापना की। कभी फूल चढ़ा देता था, अगरबत्ती करता था, फल धर देता था। 'माता जी... माता जी..... माता जी....' जप लेता था।

छुपा हुआ परम चैतन्य तो जानता है कि वह किस निमित्त से कर रहा है। स्टीकर नहीं जानता है, हेमामालिनी नहीं जानती है लेकिन परमात्मा तो जानता है। जीव के साथ आँख मिचौली खेलने वाला तो जानता है कि वह किसलिए करता है।

रिक्शावाला रोज आँखें बन्द करके प्रार्थना करता किः 'हे मेरी कुलदेवी ! मेरा धन्धा अच्छा चले। आज धन्धा अच्छा चलेगा तो रात को आकर मवा धरूँगा, लड्डू धरूँगा।

दैवयोग से उसकी ग्राहकी ऐसी चली कि बस ! स्टेशन से बस अड्डे पर.... बस अड्डे से स्टेशन पर। धन्धा ऐसा चला कि उसने टैम्पो खरीदा। धम....धम....धम...धम..।

दूसरे रिक्शावाले चकित रह गये। बोलेः "तेरा इतना तेजी से धन्धा...! और हम मक्खियाँ उड़ा रहे हैं। यह कैसे होता है ?"

उसने राज बताते हुए कहाः "एक बार एक बाबाजी मेरी रिक्शा में बैठे थे। उनकी बड़ी कृपा हो गई।"

वे बाबाजी तो सुलफाछाप थे। उनको पता भी नहीं था कि मैं क्या दे रहा हूँ। ऐसा नहीं कि वे योगी थे या तत्त्वविद् थे या रहस्यवादी थे। ऐसा कुछ नहीं था। रिक्शावाले का विश्वास, उसकी एकाकारता ऐसी थी कि महाराज ! उसके चित्त के द्वारा चेतना ने काम किया।

लोगों ने कहाः "यार ! हमें भी दिखा, वह कौन सी देवी है। वे बाबाजी कौन सी देवी दे गये हैं ?"

वह रिक्शावाला उन लोगों को अपने घर ले आया। वे लोग तो सिनेमा जगत के शौकीन थे। इस देवीजी को देखकर गाली के साथ बोल उठेः "अरे यह ? यह तो फलानी एक्ट्रैस है।यह माता जी कहाँ है ?"

"जा जा... यह तो मेरी कुलदेवी है इसकी पूजा से मेरा धन्धा बढ़ा है।"

अगर नगण्य वस्तु में भी तुम विश्वास करते हो तो तुम्हारा चैतन्य वहाँ से भी तुम्हें सहाय करता है तो सचमुच में विधिवत् प्राणप्रतिष्ठा हुई हो ऐसी मूर्ति की आराधना उपासना से अथवा सच्चे कोई आत्मवेत्ता संत, जो अमूर्त आत्मा में टिके हो, रमण महर्षि जैसे, रामकृष्ण जैसे, लीलाशाह बापू जैसे ब्रह्मवेत्ता आत्म-साक्षात्कारी पुरुषों के प्रति श्रद्धा-भक्ति से इस लोक और परलोक में लाभ सहज में होने लगे इसमें क्या आश्चर्य है ? गुरु ने विधिवत् मंत्र दिया हो उसका जप करें, जिन्होंने अपने आत्म-स्वरूप को पाया है ऐसे महापुरुषों के मार्गदर्शन पर चलने लग जायें तो कल्याण होने में कोई सन्देह नहीं है। तुम्हारी भावना के बल से खड़िया पलटनवाले बाबाजी का स्टीकर इतना काम कर सकता है तो जो सचमुच में जगे हैं ऐसे वेदव्यासजी, श्रीकृष्ण, श्रीरामजी, संत कबीर जी, ज्ञानेश्वर महाराज, एकनाथजी महाराज, पूज्यपाद लीलाशाहजी भगवान आदि आदि सत्पुरुषों की बात को पकड़कर चलने लग जायें तो कितना काम हो जायेगा ! उसको तो पैडल रिक्शा में से टैम्पो मिला लेकिन तुमको तो जीव में से ब्रह्म मिल जायेगा।

गीता ने कहाः

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।

"जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान मनुष्य ज्ञान को प्राप्त होता है तथा ज्ञान को प्राप्त होकर वह बिना विलम्ब के, तत्काल ही भगवत्प्राप्ति रूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है।"

(गीताः 4.39)

श्रद्धालु को आत्मज्ञान होता लेकिन श्रद्धा तुम्हारी कैसी है उसकी कसौटी है कि श्रद्धेय के वचन पर तुम्हारा विश्वास कैसा है.... तत्परता कितनी है ? श्रद्धेय के वचन को तुम अपने जीवन में कितना उतारते हो ? जितने अंश में उतारते हो उसने अंश में ही तुम उन्नत होते हो और उतने अंश में ही तुम्हारी श्रद्धा है।

एक मूर्धन्य प्रसिद्ध नेता ने कह दियाः "मैं गाँधी जी को तो मानता हूँ लेकिन गाँधी जी के विचारों से मैं सहमत नहीं हूँ....।"

तो क्या खाक गाँधी जी को माना तुमने ?

ऐसे ही 'मैं भगवान को तो मानता हूँ लेकिन भगवान के साथ एक नहीं होऊँगा। गुरु को तो मानता हूँ लेकिन गुरु के ज्ञान के साथ एक नहीं होऊँगा।' अगर तुम भगवान को मानते हो और भगवान के ज्ञान के साथ एक होने को राजी नहीं हो तो तुम्हारे पास अज्ञान है। सही ज्ञान

तो भगवान और भगवान को पाये हुए महापुरुषों का होता है। तुम्हारे पास अज्ञान है और अज्ञान को तुम पकड़े रखे हो।'

ईश्वर के ज्ञान के साथ तुम अपना ज्ञान मिला दो। गुरु के अनुभव के साथ अपना अनुभव मिला दो। जल्दी कल्याण होगा।

इतना तो चौथी-पाँचवीं कक्षावाले विद्यार्थी भी जानता है कि शिक्षक की बात पर विश्वास करना होता है। भूगोल का कथन है कि पृथ्वी गोल है। विद्यार्थी जानता नहीं है कि सीधी दिखने वाली यह पृथ्वी गोल कैसे हो। फिर भी शिक्षक की बात मान कर परीक्षा में लिख देता है और मार्क्स ले लेता है। आगे चलकर उच्च कक्षाओं में पहुँचता है तब पता चलता है कि पृथ्वी गोल कैसे है।

जिसके बारे में तुम नहीं जानते हो और केवल सुना है उसमें विश्वास करना होता है। एक विश्वास होता है सुनी-सुनाई सामाजिक काल्पनिक बातों पर। जैसे, यह रिक्शावाले की देवी काल्पनिक थी। अभी जो संतोषी माँ है वह काल्पनिक देवी है, वास्तव में वह कुछ नहीं है। लोगों ने कल्पना करके संतोषी माता को खड़ी कर दी। संतोषी माता जैसी चिड़िया का वर्णन किसी भी शास्त्रपुराण में नहीं है।

दूसरा होता है शास्त्रीय विश्वास।

देवी और भगवान कैसे होते हैं ? शुद्ध बुद्ध सच्चिदानंद परमात्मा में जब सृष्टि का फुरना हुआ तो उस फुरने में... 'एको ऽहं बहु स्याम्' में...'बहु स्याम्' होते हुए भी अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं भूले वे हो गये भगवान कोटि के, देवी कोटि के, देवता कोटि के और अपना मूल स्वरूप भूलकर स्थूल शरीर में मैं पना किया वे जीवभाव में आ गये। भगवान कोटि से, देवी देवता कोटि के आत्मा स्थूल में भी जी सकते हैं और सूक्ष्म में भी पहुँच सकते हैं, जैसे जगदँबा है या और भगवदीय देवियाँ हैं अथवा भगवद् तत्त्व को पाये हुए ब्रह्मवेत्ता महापुरुष हैं।

यह है शास्त्रीय विश्वास। दूसरा होता है अशास्त्रीय विश्वास। जैसे, धन्ना जाट को भाँग घोटने वाले पण्डित ने भाँग घोटने का सिलबट्टा देते हुए कह दियाः "यह ठाकुरजी है। नहाकर नहलैयो.... खिलाकर खइयो।' हालाँकि वे ठाकुर जी नहीं थे, प्राणप्रतिष्ठा नहीं की गई थी। उसमें चेतन प्रकट हो ऐसी विधिवत् चेष्टा पण्डित की ओर से नहीं थी। लेकिन धन्ना जाट का अत्यंत विश्वास था तो वे ठाकुरजी देखते हैं कि अब आँखमिचौली में इसके आगे अप्रकट रहना इससे सहा नहीं जायगा तो वे धन्ना के आगे साक्षात प्रकट हो गये।

वह चैतन्य स्वरूप परमात्मा पत्थर में से भी प्रकट हो सकता है तो तुम्हारे दिल में क्यों प्रकट नहीं होगा ?

वे शास्त्रीय ठाकुरजी नहीं थे, अशास्त्रीय थे। सिलबट्टा था सिलबट्टा भाँग घोंटने का। पण्डितजी कुछ दिन तक गाँव में कथा करके जा रहे थे तो रास्ते में धन्ना जाट ने, एक लड़के ने उनको रोका। प्रार्थना कीः "महाराज ! मुझे ठाकुरजी दे जाओ। मैं रोज पूजा करूँगा।"

पण्डितजी ना ना करते रहे पर धन्ना का आग्रह जारी रहा। बहुत खींचातानी के बाद उसने पण्डित को विवश कर दिया। पण्डित ने उस जिद्दी जाट से जान छुड़ाने के लिए अपना भाँग घोंटने का सिलबट्टा दे दिया कि ले, ये ठाकुरजी हैं। बच्चे ने तो कभी ठाकुरजी को देखा नहीं था, सिर्फ कथा सुनी थी कि ठाकुर जी की पूजा करने से कल्याण होता है।

धन्ना जाट का कल्याण हो गया।

जिसको आपने देखा नहीं उसमें विश्वास करना होता है। विश्वास हो तो बिल्कुल अन्धा हो और विचार करो तो बिल्कुल निष्ठुर, तर्कयुक्त, तीक्षण, तलवार की धार जैसा। उसमें फिर कोई पक्षपात नहीं।

श्रद्धा करो तो अन्धी करो । काम करो तो मशीन होकर करो, बिल्कुल व्यवस्थित, क्षति रहित। विश्वास करो तो बस.... धन्ना जाट की नाँईं। आत्मविचार करो तो बिल्कुल तटस्थ।

लोग श्रद्धा करने की जगह पर विचार करते हैं, तर्क लड़ाते हैं और आत्म विचार की जगह पर श्रद्धा करते हैं। अपनी 'मैं' के विषय में विचार चाहिए और भगवान को मानने में विश्वास चाहिए। वस्तु का उपयोग करने में तटस्थता चाहिए। ये तीन बाते आ जाय तो कल्याण हो जाय।

नारायण.... नारायण.... नारायण.....।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रसंगचतुष्ट्य

ऋण चुकाना ही पड़ता है....

आज से करीब 40-45 साल पूर्व की एक घटित घटना है।

मकराणा की एक धर्मशाला में पति पत्नी अपने छोटे से नन्हे-मुन्ने के साथ टिके। कच्ची धर्मशाला थी। दीवालों में दरारें पड़ गई थी। ऊपर पतरे थे। आसपास में खुला जंगल जैसा माहौल था।

पति-पत्नी अपने छोटे से बच्चे को प्रांगण में बिठाकर कुछ काम से बाहर गये। वापस आकर देखते हैं तो बच्चे के सामने एक बड़ा फणीधर नाग कुण्डली मारकर फन उठाये बैठा है। यह भयंकर दृश्य देखकर दोनों हक्के बक्के रह गये। बेटा मिट्टी की मुट्ठी भर-भरकर नाग की फन पर फेंक रहा है और नाग हर बार झुक-झुककर सहे जा रहा है। माँ चीख उठी... बाप चिल्लायाः 'बचाओ..... बचाओ हमारे लाडले को बचाओ।'

लोगों की भीड़ हो गई। उसमें एक निशानेबाज था। ऊँटलारी पर बोझा ढोने का धन्धा करता था। वह बोलाः "मैं निशाना तो मारूँ, सर्प को ही खत्म करूँगा लेकिन निशाना चूक जाऊँ और बच्चे को लग जाय तो मैं जिम्मेदार नहीं। आप लोग बोलो तो मैं कोशिश करूँ।"

पुत्र के आगे विषधर बैठा है। ऐसे प्रसंग पर कौन-सी माँ इन्कार करेगी ? वह सहमत हो गई और बोली "भाई ! साँप को मारने की कोशिश करो। गलती से बच्चे को चोट लग जायगी तो हम कुछ नहीं कहेंगे।"

ऊँटवाले ने निशाना मारा। साँप जख्मी होकर गिर पड़ा मूर्छित हो गया। लोगों ने सोचा कि साँप मर गया। उसको उठाकर बाड़ में फेंक दिया।

रात हुई वह ऊँटवाला उसी धर्मशाला में अपनी ऊँटगाड़ी पर सो गया। पिछली रात की ठण्डी हवा चली। मूर्छित साँप सचेतन हो गया और आकर ऊँटवाले को पैर में डसकर चला गया। सुबह में लोग देखते हैं तो वह मरा हुआ पड़ा था।

दैवयोग से सर्पविद्या जाननेवाला एक आदमी वहाँ ठहरा हुआ था। वह बोलाः

"साँप को यहाँ बुलाकर जहर को वापस खिंचवाने की विद्या मैं जानता हूँ। यहाँ कोई आठ-दस साल का निर्दोष बच्चा हो तो उसके चित्त में साँप के सूक्ष्म शरीर को बुला दूँ और वार्तालाप करा दूँ।"

मकराणा गाँव में से आठ दस साल का बच्चा लाया गया। उसने उस बच्चे में साँप के जीव को बुलाया। उससे पूछा गयाः

"इस ऊँटवाले को तू ने काटा है ?"

"हाँ।"

"इस बेचारे को क्यों काटा ?"

बच्चे के द्वारा वह साँप बोलने लगाः

"मैं निर्दोष था। मैंने उसका कुछ बिगाड़ा नहीं था। उसने मुझे निशाना बनाया तो मैं क्यों उसका बदला न लूँ ?"

"वह बच्चा तुम पर मिट्टी डाल रहा था उसको तुमने कुछ नहीं किया !"

"बच्चा तो मेरा तीन जन्म पहले का लेनदार है। तीन जन्म पहले मैं भी मनुष्य था, वह भी मनुष्य था। मैंने उससे तीनसौ रूपये लिये थे लेकिन वापस दे नहीं पाया। अभी तो देने की क्षमता भी नहीं है। ऐसी भद्दी योनियों में भटकना पड़ रहा है। संयोगवश वह सामने आ गया तो मैं अपना फन झुका-झुकाकर उससे माफी ले रहा था। उसकी आत्मा जागृत हुई तो धूल की मुट्ठियाँ फेंक-फेंककर मुझे फटकार रहा था कि लानत है तुझे ! कर्जा नहीं चुका सका.....।" उसकी यह फटकार सहते-सहते मैं अपना ऋण अदा कर रहा था। हमारे लेन देने के बीच टपकनेवाला यह कौन होता है ? मैंने उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ा था फिर भी उसने मुझे मार गिराया। मैंने इसका बदला लिया।"

सर्पविद्या जानने वाले ने साँप को समझायाः

"देखो, तुम हमारा इतना कहना मानो, उसका जहर खींच लो।"

"मैं तुम्हारा कहना मानूँ तो तुम मेरा कहना मानो। मेरी तो वैर लेने की योनि है। और कुछ नहीं तो नहीं सही मुझे यह ऊँटवाला पाँचसौ रूपये देवे तो अभी इसका जहर खींच लूँ। इस बच्चे से तीन जन्म पूर्व तीन सौ रूपये मिले थे। दो जन्म और बीत गये उसके सूद के दौ सौ मिलाकर कुल पाँच सौ रूपये लौटाने हैं।"

किसी सज्जन ने पाँच सौ रूपये उस बच्चे के माँ बाप को दे दिये। साँप का जीव वापस अपनी देह में गया, वहाँ से सरकता हुआ मरे हुए ऊँटवाले के पास आया और जहर वापस खींच लिया। ऊँटवाला जिन्दा हो गया।

यह बिल्कुल घटित घटना है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। 'कल्याण' मासिक में यह घटना छपी थी।

इस कथा से स्पष्ट होती है कि इतना व्यर्थ खर्च नहीं करना चाहिए ताकि सिर पर कर्जा चढ़ाकर मरना पड़े और वापस चुकाने के लिए फन झुकानी पड़े, मिट्टी से फटकार सहना पड़े।

जब तक आत्मज्ञान नहीं होता तब तक कर्मों का ऋणानुबन्ध चुकाना ही पड़ता है। अतः निष्काम कर्म करके ईश्वर को सन्तुष्ट करें। अपने आत्मा परमात्मा का अनुभव करके यहीं पर, इसी जन्म में शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त करें।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अकिंचन सम्राट

कश्मीर देश में पण्डित रामनाथ तर्करत्न न्यायाचार्य रहते थे। उन्होंने संस्कृत में चार ग्रंथ लिखे। ये ग्रंथ पढ़कर बड़े-बड़े विद्वान उनसे प्रभावित हुए। पण्डित जी का जीवन बहुत सीधा, सादा और सरल था। उनकी पत्नी भी बड़ी सच्ची ती। दोनों पवित्र आत्मा थे।

उनकी संपत्ति में एक चटाई थी, कुछ किताबें थी, लेखिनी थी, दो जोड़ी वस्त्र थे। कभी किसी से कुछ माँगना नहीं, मुफ्त का खाना नहीं। उनकी पत्नी, बेचारी ब्राह्मणी जंगल में से गूँज तोड़कर लाती, रस्सियाँ बनाती और बेचकर भोजन-सामग्री लाती। रसोई पकाती, घर की सफाई करती, पति देव को भोजन कराती, उनकी सेवा में तल्लीन रहती और शेष जो कुछ भोजन बचता उसी को खाकर संतुष्ट रहती।

पण्डितजी ईश्वर स्मरण में, स्वाध्याय में, लेखन-प्रवृत्ति में तल्लीन रहते। उन्हें यह पता ही नहीं रहता था कि घर में दाल आटा है या नहीं। धर्मपत्नी कैसे खर्चापानी चलाती है, क्या करती है, कभी पूछा ही नहीं। घर की बात घरवाले जानें !

पण्डित जी ने चार ग्रंथ दिये वे संस्कृत जगत में बड़े अदभुत ग्रंथ हैं।

पत्नी पति की सेवा परिश्रम करते हुए भी बड़ी संतुष्ट रहती थी, सोचती थी कि 'सेवा करने का मौका मिल रहा है..... सेवा ले तो नहीं रही हूँ।' जंगल से मूँज लाना, रस्सी बनाकर बेचना और सीधा-सामान खरीदना, भोजन बनाना, पति को भोग लगाना और बाद में बचा हुआ, जो भी प्रारब्धवेग से मिल गया वह खाना।

अब बताओ, ऐसी स्त्रियाँ जिस देश में हो गई, ऐसे पति हो गये उस देश की आध्यात्मिक पूँजी कितनी समृद्ध होगी !

धीरे-धीरे पण्डितजी की ख्याति फैली। दूसरे देशों के विद्वान कश्मीर में आकर राजा से कहने लगेः

"राजन् ! जिस देश में विद्वान, पवित्र आत्मा, धर्मात्मा पुरुष दुःख पाते हैं उस देश के राजा को पाप लगता है। आपके देश में ऐसे पवित्रात्मा हैं कि जिनको खाने का ठिकाना नहीं। आप उनकी खोज खबर नहीं लेते ?"

राजा स्वयं उन पण्डितजी की झोंपड़ी में पहुँच गया। हाथ जोड़कर पण्डित जी से प्रार्थना कीः

"भगवन् ! आपको कुछ कमी तो नहीं ?"

पण्डित जी बोलेः "मैंने चार ग्रंथ लिखे हैं। उनमें मुझे तो कोई कमी नहीं दिखती। आप देखो, कोई कमी हो तो बताओ।"

राजा बोलाः "ब्रह्मन् ! मैं ग्रंथों की कमी नहीं पूछता हूँ, शब्दों की कमी नहीं पूछता हूँ, अन्न जल की, बर्तन की, वस्त्र की, घर-बार की कमी के बारे में पूछता हूँ।"

पण्डितजी बोलेः "घर का व्यवहार घरवाले जानें। उस व्यवहार का तो मुझे कोई स्मरण भी नहीं है। मेरा तो उस प्रभु का ऐसा स्मरण है कि घर का कोई पता ही नहीं।"

जो भगवान की स्मृति में रहता है उसके सम्राट भी आ जाता है तो संसार की बात नहीं करता।

राजा ने प्रार्थना करते हुए कहाः "घर की बात घरवाले जाने, आपको स्मरण नहीं तो आप मुझे इजाजत दीजिये, मैं माताजी से मिलूँ।"

राजा ने नतमस्तक होकर झोंपड़ी में प्रवेश किया। हाथ जोड़कर बोलाः

"माँ ! तुम्हारे घर में अन्न-वस्त्र-व्यवहार किसी भी बात की कमी हो तो मुझे आज्ञा दीजिए, मैं सेवा का मौका लूँ। जिस देश में पवित्रजन दुःखी हों उस देश का राजा पाप का भागी होता है। माँ बताओ, मैं क्या सेवा करूँ ?"

जब राजा ने ऐसा दुहराया तो पण्डितजी ने अपना आसन समेट लिया, धोती और चटाई बगल में दबा ली। पत्नी से कहाः

"ये किताबें उठा। हम यहाँ से चले जाते हैं। हमारे रहने से इस राजा पर पाप पड़ता हो, इस राज्य पर लांछन लगता हो तो हम कहीं और चले चलें। हमारे कारण किसी को दुःख हो यह अच्छा नहीं।"

राजा चरणों में गिर पड़ाः "नाथ ! मेरा भाव ऐसा नहीं था। मैं तो आपकी सेवा का मौका माँग रहा हूँ प्रभु आप रूठ न जाएँ।"

"सेवा की मुझे कोई जरूरत नहीं है। इस पण्डिताइन से पूछ लो, अगर वह कुछ चाहती हो तो।"

राजा ने फिर से माताजी की ओर देखा तो वह बोलीः

"नदियाँ पानी दे रही हैं, सूर्य प्रकाश दे रहा है, मेरा अनन्त परमात्मा हवाएँ बहाकर प्राणवायु देकर हमारा जीवन चेतनयुक्त बना रहा है। वह प्यारा प्रभु हमारे रक्त की शुद्धि के लिए हृदय में धड़कने दे रहा है। वह अनन्त ब्रह्माण्डों के नायक ब्रह्म-परमात्मा सदैव हमारे साथ हैं तो हमें कमी किस बात की ? राजन ! हमें कोई कमी नहीं। वह आप्तकाम परमात्मा पूरे का पूरा हमारे हृदय में बस रहा है। सर्वव्याप्त, सर्वशक्तिमान ईश्वर, तमाम ब्रह्माण्डों को सत्ता-स्फूर्ति देने वाला परमात्मा हमारे भीतर बैठकर हमारा जीवन चला रहा है, हमारे श्वासों में बैठकर इन्द्रियों को सत्ता दे रहा है। वह परमात्मा नींद में रक्षा करता है। जाग्रत में वह अपनी ओर प्रेरित करता है। स्वप्न में भी अपनी सत्ता दे रहा है।

हे राजन् ! मुझे कोई अभाव नहीं। घर में शाम तक का आटा पड़ा है। दो दिन जल सके उतनी लकड़ियाँ पड़ी हैं। मिर्च-मसाला भी कल तक चल सकेगा। पक्षियों को तो शाम तक का भी दाना नहीं होता है फिर भी आनन्द से जी लेते हैं। मेरे पास कल तक की सामग्री पड़ी है फिर मैं चिन्ता क्यों करूँ ?

हे नृपति ! मेरे वस्त्र इतने नहीं फटे कि मैं पहन न सकूँ। पुराने जरूर हो गये हैं लेकिन फटे नहीं हैं। दो साड़ियाँ हैं मेरे पास। बिछाने के लिए चद्दर भी है। एक चटाई भी पड़ी है घर में। और मैं तुम्हें क्या बताऊँ... मेरी चूड़ियाँ अमर हैं। मेरे पति मेरे साथ हैं। सबमें बसे हुए मेरे पति का तत्त्व मेरे हृदय में धड़कने ले रहा है। मुझे अभाव किस बात का बेटा !"

राजा भाव से पिघल गया। चरणों में गिर पड़ा बोलाः

"माँ ! तुम गृहस्थी हो कि साध्वी हो कि सन्यासिनी हो, कहना मुश्किल है लेकिन तुम जो हो, तुम्हारे चरणों में मेरे शत शत प्रणाम हैं।"

जो लोग परमात्मा का स्मरण करते हैं उन्हें महंत बनने की, मंडलेश्वर बनने की, पद-प्रतिष्ठा पाने की परवाह ही नहीं होती है। जो लोग परमात्मा में तल्लीन हैं उन्हें संसार के अभाव की कोई परवाह ही नहीं होती। कोई सम्राट आकर आदर करे तो उन्हें कोई आकर्षण नहीं होता। कोई अनादर करे तो दुःख नहीं होता। क्योंकि सुख और दुःख तो वृत्ति से भासते हैं। जिनकी वृत्ति

परमात्मा के शरण में चली गई, अर्थात् ब्रह्माकार होकर ब्रह्म परमात्मा में लीन हो गई उनको सुख और दुःख कैसे भासे ?

जो लोग साधू, साधक या साध्वी होकर लड़ते झगड़ते हैं तो मान लेना कि वे परमात्मा के शरण नहीं गये हैं, वे शरीर के शरण हैं। साधक-साध्वी-साधू होकर विकार आ जाय ! संसारी होकर विषाद् आ जाय ! सेठ होकर अहंकार आ जाय ! तो तू सेठ कैसा ? तू तो महा दरिद्र है। तू गृहस्थी कैसा ? तू तो महा चाण्डाल है। तेरा मन तो परमात्मा में लगना चाहिए था तेरा जन्म तो हुआ था परमात्मा की शरण लेने के लिए लेकिन तू रुपयों की शरण हो गया। तेरा जन्म तो हुआ था ईश्वर की शरण में जाने के लिए लेकिन तू माया के किसी गुण के शरण हो गया।

जो लोग साधु-संतों के पास जाते हैं, निर्दोष भाव से जाते हैं, पवित्र भाव से जाते हैं उन्हें जो लाभ होता है वह लाभ संसार की तुच्छ वासनाओं के लिए संतों के पास जाने वालों को नहीं होता। संसार की तुच्छ वासना रखकर जो संतों के पास जाते हैं उनको तो तुच्छ चीजें मिलती होंगी लेकिन जो स्वाभाविक जाते हैं, परमात्मा की शरण पाने को जाते हैं, परमात्मा का सहारा पाने के लिए जाते हैं, परमात्मा सचमुच उनके हृदय में प्रकट होने को उत्सुक होता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

नाम-जप में मन नहीं लगता तो.....

'बाबाजी ! भगवान का नाम जपने में हमें कोई रस नहीं आता है। भजन करने में मजा नहीं आता। जप में रूचि नहीं होती।'

भाई ! तुम साढ़े तेईस घण्टे अपनी रूचि के काम करते हो आधा घण्टा अपनी रूचि नही है तो कोई बात नहीं। मेरी रूचि के लिए ही जाप करो बेटा ! गुरु की प्रसन्नता के लिए ही ध्यान भजन जप करो। साढ़े तेईस घण्टे तुम अपनी प्रसन्नता के लिए काम करते हो, आधा घण्टा गुरु या भगवान की प्रसन्नता के लिए ही काम या भजन करो।

जप में रूचि नहीं है तो कोई बात नहीं। रूचि न होते हुए भी जप करो। नौकरी में रूचि नहीं होती फिर भी करते हो तो पगार मिलता है।

सुबह-सुबह में सड़क पर साहब जा रहे हैं। पूछाः

"कहाँ जा रहे हो ? नौकरी पर ?"

"नहीं बाबाजी ! सैर करने जा रहा हूँ।"

साढ़े तीन घण्टे बीते। फिर सड़क पर साहब मिले तो पूछाः

"क्यों, सैर करने चले ?"

"नहीं बाबाजी ! नौकरी है आज भी।" उबान के साथ जवाब मिला।

सड़क वही की वही, पैर वही के वही, जानेवाला वही का वही और पूछने वाले भी वही के वही लेकिन जवाब में से उत्साह गायब है। चेहरे पर कोई खुशी नहीं है। नहीं चाहते हुए भी तो नौकरी पर जाना पड़ता है। सज्जन लोगों को भ्रष्टाचारी अमलदार-ऑफिसर लोगों के बीच नौकरी करने जाना अच्छा नहीं लगता। जो खुद भ्रष्टाचार करने लगे हैं उनको सज्जन साहबों के पास नौकरी करना अच्छा नहीं लगता। फिर भी जाते हैं।

चार पैसों के लिए जहाँ जाने की रुचि न होती हो वहाँ भी जाते हो तो गुरु की प्रसन्नता के लिए, भगवान की प्रसन्नता के लिए अपनी रूचि न होने पर भी जप करोगे तो क्या घाटा है ?

"महाराज ! हमारी रूचि नहीं है तो जप करने से क्या होगा?"

तुम लोग रुचि जगाना तो चाहते ही हो। तभी तो आकर हमसे प्रश्न करते हो। रुचि नहीं है फिर भी जप करोगे तो रूचि बन जायेगी। मेले में तुम किसी व्यक्ति को देखते हो तो एकदम से उसके लिए स्नेह पैदा नहीं होता। जिसके लिए तुमने पहले खूब सुन रखा है, जिसका नाम तुम बोलते हो, सुनते हो, जिसके बारे में सोचते हो वह व्यक्ति अगर मेले में अक्समात् मिल जाय तो तुमको कितना आनन्द आयेगा ! उसे गले लगा लोगे।

ऐसे ही भगवान का जप-तप करने से उसके प्रति रूचि बढ़ेगी। एक बार मिलेगा तो फिर वह सर्वत्र है। बिछुड़ा हुआ कभी नहीं रहेगा।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जीवन का अनुभव

जीव और परमात्मा के बीच केवल अहं की कड़ी दीवार ही खड़ी है। दोनों के बीच और कोई दूरी नहीं है। जब अहंकार खड़ा होता है तो परमात्मा छिप जाता है। अहंकार खो जाता है तो जीव परमात्मा हो जाता है।

एक बूढ़े संत महात्मा से किसी गृहस्थी ने पूछाः

"बाबाजी ! आपके जीवन का साररूप अनुभव क्या है ?"

बाबाजी ने कहाः "देख ले, यह मेरे सारे जीवन का साररूप अनुभव है...." कहकर उन्होंने अपना मुँह खोला। दाँत नहीं थे। जिह्वा घुमाकर बताया किः "यही हमारे जीवन का अनुभव है।"

"बाबाजी ! हम कुछ समझे नहीं, कृपा करके बताइये।" गृहस्थ ने प्रार्थना की।

बाबाजी बोलेः "देखो, दाँत कड़े थे तो गायब हो गये जिह्वा नरम है इसलिए मौजूद है। जो कड़ा होता है वह जाता है। यही मेरे जीवन का अनुभव है।"

जिसमें कड़ापन है, अकड़ है वह जल्दी मरता है।

देह को 'मेरा' मानकर जो अकड़ा है और बुद्धि के द्वारा जो कुछ जगत का कचरा भरा है, उस विद्या को मेरी विद्या मानकर जो अकड़ा है वह जल्दी टूट जाता है। जिसको इन सांसारिक चीजों की अकड़ नहीं है, जो अस्तित्व पर बिखरता है उसकी भक्ति, उसकी श्रद्धा, उसकी ईश्वर-प्रीति कायम रहती है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

दिव्य विचार से पुष्ट बनो

सदा दिव्य विचारों को अपने में भरो। कभी नकारात्मक विचारों को अपने में आने मत दो। कभी दुःख-चिंता के या पलायनवादी विचारों को पोषण मत दो। हताशा को नजदीक मत आने दो। ईश्वर की अनन्त शक्ति तुम्हारे साथ है। तुम्हारे रोम-रोम में जो चेतना रम रही है उसी का नाम तो राम है। राम तुमसे दूर नहीं..... चैतन्य तुमसे दूर नहीं.... परमेश्वर तुमसे दूर नहीं। अभागे विषय-विकारों ने तुम्हें भगवान से और उन्नति से दूर रखा है। अपने न्यायाधीश आप बनो। सदियों से तुम्हें धोखा देने वाला तुम्हारा दुर्बल और विकारी मन, अनिश्चयात्मिका बुद्धि और छोटी-छोटी बातों में उलझे हुए लोगों का संग.... इन सब कारणों से तुम क्षुद्र बन गये हो।

कभी बहुमति पर विश्वास मत करो। सदा श्रेष्ठमति पर विश्वास करो। बहुमति क्या कह रही है उसकी परवाह मत करो। बहुमति को रिझाने के चक्कर में मत पड़ो। परमात्मा को रिझा लो, बहुमति अपने आप रिझी हुई मिलेगी। अगर नहीं रिझती है तो उसका दुर्भाग्य है। अपने आत्मा-परमात्मा को रिझा लो, तुम्हारा बेड़ा पार हो जायगा और बहुमति को भी मार्गदर्शन मिल जायेगा।

जगत की 'तू-तू.... मैं-मैं...' को सत्य मानकर अपनी खोपड़ी को भरो मत। जगत का बहुत सुन लिया। 'यह अच्छा है... वह बुरा है....' ये सारे मन के खिलवाड़ हैं। उनसे ऊपर उठो.... जगत से पार हो जाओ। हरि ॐ तत्सत्.... और सब गपशप।

जी बीत गया उसको भुला दो। जो चल रहा है उसको हँसकर बीतने दो। जो आयेगा उसकी चिन्ता मत करो। आज तुम अपने आत्मा में डट जाओ। कल तुम्हारे लिए सुन्दर आयेगा। अभी तुम अपने आत्मबल में आ जाओ.... निर्विकारी नारायण तत्त्व में आ जाओ। जीवन का सत्य यह है। तुम्हारी पसन्दगी तुच्छ चीजों की नहीं होनी चाहिए। तुम्हारा आकर्षण नश्वर चीजों के लिए नहीं होना चाहिए।

तुम ऐसी चीजों को प्यार करते हो जो तुम्हें पहचानती तक नहीं ! यह कहाँ की बुद्धिमानी है ? तुम उसे प्यार करो जो अनादि काल से तुम्हें पहचानता है.... वह चैतन्य आत्मदेव।

मकान तुम्हें नहीं पहचानता। गाड़ी तुम्हें नहीं पहचानती। रुपये तुम्हें नहीं पहचानते। चोर इन्हें लेकर चले जायें तो ये हीरे-जवाहरात, सोने-चाँदी के टुकड़े, रूपये-पैसे तुम्हें राम राम करने को नहीं आयेंगे। ये तुम्हें पहचानेंगे नहीं। तुम्हें जो अभी पहचानता है, युगों से पहले पहचानता था, इस शरीर के बाद भी जो तुम्हें पहचानेगा उसकी पसन्दगी करो। जो तुम्हें वास्तव में चाहता है उस परमात्म-चैतन्य को तुम चाहो। नश्वर चीजें तुम्हें नहीं चाहती हैं। शाश्वत चैतन्य परमात्मा तुम्हें चाहता है। अगर परमात्मा तुम्हें नहीं चाहता तो इन सर्दियों के दिनों में धारणा, ध्यान, समाधि और तत्त्वज्ञान की इस जगह पर तुम पहुँच भी न पाते। इसका मतलब यह है कि भगवान तुम्हें चाहता है, परमात्मा तुम्हें चाहता है अतः परमात्म-साक्षात्कार ही तुम्हारी पसन्दगी होनी चाहिए।

छोटी-छोटी पसन्दगियों में अपने को उलझाओ मत। अब तुम बच्चे नहीं हो। समय तेजी से बहा रहा जा रहा है। अपना काम पूरा कर लो। बिजली के चमकारे में सूई में धागा पिरोने जैसी बात है। न जाने कब दम टूट जाय, कोई पता नहीं। कब तक छोटी-छोटी बातों में अपने को खपाते रहोगे ? कब तक छोटे-छोटे आकर्षणों में अपने को उलझाते रहोगे ?

चरैवेति.... चरैवेति.... चरति चरतो भगः।

आगे बढ़ो.... आगे बढ़ो....। बैलगाड़ी में पचासों साल तक घूम लिया। अब वायुयान में केवल दो घण्टे बैठो, दरिया पार की खबरें सुना देगा। दो दिन हवाई जहाज की यात्रा करो, देश विदेश का चक्कर काटकर अपने धाम में आ जाओगे। ऐसे विहंग मार्ग का आश्रय लो।

जब भौतिक विनाश तेजी से हो रहा है तो आध्यात्मिक उन्नति देरी से क्यों ? आध्यात्मिक उन्नति भी तेजी से होनी चाहिए।

मूंआ पछीनो वायदो नकामो को जाणे छे काल....।

मरने के बाद कल्याण होगा, आत्मशांति मिलेगी ऐसा वादा नहीं। कोई भगवान का पार्षद, कोई देवदूत आकर अपने कन्धे पर बिठाकर भगवान के पास ले जाएगा.... ऐसी बात नहीं। हम उन्हें कष्ट क्यों दें ? उन्हें तकलीफ क्यों दें ? देवताओं के पार्षद आयें और हमें स्वर्ग में या वैकुण्ठ में ले जायें यह भी हमें आशा नहीं।

हम राजी हैं उसमें जिसमें तेरी रजा है....।

कभी-कभी अपने इष्टदेव को, अपने गुरुदेव को तसल्ली दे दो कि हे इष्टदेव ! हे गुरुदेव ! हे भगवान ! हम आपके निर्दिष्ट मार्ग पर चलेंगे। हम कुन्दन हैं, सुवर्ण हैं, पित्तल नहीं हैं। पित्तल यानेः संसार की तुच्छ चीजों का आकर्षण होना, देह को 'मैं' मानना, यह पित्तलपना है। हम पित्तल नहीं हैं।

कुन्दन के हम हैं डले जब चाहे तू गला ले।
बाँवर न हो तो हमको ले आज तू आजमा ले।।
जैसी तेरी खुशी हो सब नाच तू नचा ले।

सब छानबीन करके हर तौर तू आजमा ले।।

हम भागेंगे फिसलेंगे नहीं। हर तौर तू आजमा ले। आजमाने में भी सफल होने की शक्ति तू ही देगा। क्योंकि हमें तेरी कृपा पर भरोसा है। हम यह गर्व से नहीं कहते लेकिन प्यार से कहते हैं। मुहब्बत जोर पकड़ती है तो शरारत का रूप लेती है। गोपियों ने तुम्हें मक्खन की लोंदी पर नचाया था। अहिरन की छोरियों ने तुम्हें छाछ पर नचाया था। क्योंकि तू उदार है। तेरा विधान मंगलमय है।

हे मंगलमय विधानदाता ! हम तेरे विधान के अनुकूल हैं। जिस ढंग से तू नचाना चाहता है नचा ले, जी भरके नचा ले। दिल भरके आजमा ले। हम तेरे ही हैं, तेरे ही रहेंगे और तुझ ही में मिल जाएँगे, नश्वर में नहीं जाएँगे।

हरि ॐ.... ॐ.... ॐ.....ॐ.... गुरु.... ॐ....।

अपने आप पर विश्वास करो। विकारों को और दुर्बलताओं को कुचलकर दूर फेंको। बल ही जीवन है... .दुर्बलता मौत है। श्रद्धा बल....साधन बल.....भरोसा बल....।

बड़े-बड़े महारथी द्रौपदी की रक्षा न कर सके। हजार हाथियों का बल रखने वाले दुःशासन जैसे दुष्ट के आगे भी द्रौपदी झुकी नहीं। अपने इष्टदेव को पुकारा। वह परमात्मा प्रकट हो गया।

परमात्मा वस्त्र रूप में भी प्रकट हो सकता है तो तुम्हारे दिल में प्रकट होने में क्या देर लगती है ?

हरि ॐ.... हरि ॐ.... हरि ॐ....।

दृढ़ता.... हिम्मत.... तत्परता.... विकारों को कुचलने की आत्मशक्ति नितान्त आवश्यक है, उसे जगाओ।

भय को दूर भगा दो। ईश्वर से भी डरो मत... ईश्वर से भी भय मत करो। ईश्वर से तो प्रेम करना होता है। परमात्मा प्रेमास्पद है। उसे स्नेह करते जाओ। वह तुम्हारा अपना है। तुम्हारा राम तुम्हारा अपना है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

तुम्हारे चित्त में जो इच्छा उठ रही है, उसकी पूर्ति जीवन के लिए कितनी आवश्यक है? क्या उसके बिना तुम्हारा काम नहीं चल सकता ? कम से कम इच्छा करो। हो सके तो उसका नाश कर दो। जब तुम्हारी आवश्यकताओं को तुमसे अधिक जाननेवाला और उनको पूर्ण करने वाला विद्यमान है, तब तुम क्यों इच्छा करते हो ? उस पर विश्वास करो। तनिक सोचो तो, उसको तुम्हारे हित का कितना ज्ञान और ध्यान है !

ॐॐॐॐॐॐॐॐ

अपनी वर्त्तमान अवस्था चाहे कैसी भी हो, उसको सर्वोच्च मानने से ही आप के हृदय में आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान का अनायास उदय होने लगेगा। आत्म-साक्षात्कार को मीलों दूर की कोई

चीज समझकर उसके पीछे दौड़ना नहीं है, चिन्तित होना नहीं है। चिन्ता की गठरी उठाकर व्यथित होने की जरूरत नहीं। जिस क्षण आप निश्चिंतता में गोता मारोगे उसी क्षण आपका निजस्वरूप प्रकट हो जायगा। अरे ! प्रकट क्या होगा, आप स्वयं निजस्वरूप हो ही। अ-निज को छोड़ दो तो निजस्वरूप तो हो ही।

ॐॐॐॐॐॐॐॐ

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत-जात ते सिल पर परत निसान।।

अभ्यास ही गुरु है। तुम कठिन से कठिन अभ्यास करो, साधना का अभ्यास करो तो तुम अपने साध्य तक पहुँच जाओगे। अन्यथा, गुरु तुम पर दया करके यदि कोई चमत्कार भी कर दिखायें और तुम्हें समाधि-दशा में भी पहुँचा दें, पर अभ्यास के अभाव में तुम उसका सत्फल नहीं प्राप्त कर सकोगे और तुम्हारी स्थिति त्रिशंकू की भाँति बन सकती है। अतः गुरु-उपदेश को श्रवण करने के लिए सदैव तत्पर रहो। गुरु-आश्रम में रहकर योगाभ्यास करने वाला शिष्य विविध विघ्न-बाधाओं से निर्भीक रहता है। जो भी संकट साधना-यात्रा में आते हैं, उन्हें सहर्ष पार कर जाते हैं।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जब तक मनुष्य को अपनी वर्त्तमान स्थिति की तुच्छता का ख्याल नहीं आता और अपनी महान स्थिति को पाने की इच्छा नहीं होती तब तक भले ही ब्रह्माजी का उपदेश देते हों या साक्षात् श्रीहरि अवतरित हो जायें फिर भी विवेक नहीं जागेगा।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

हरेक पदार्थ पर से अपने मोह को हटा लो और एक सत्य पर, एक तथ्य पर, अपने ईश्वरत्व पर समग्र ध्यान को केन्द्रित करो। तुरन्त आपको आत्म-साक्षात्कार होगा।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ